श्री मदन्तकृद्दशांग सूत्रम्

(अ ष्ट म अं ग – सू त्र)

[पीयूषधारा टीका सहित]

सम्पादक:—

श्री जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज सा० के सुशिष्य
उपाध्याय पं० मुनि श्री प्यारचन्दजी महाराज सा०

प्रकाशक:—

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
मेवाडी बाजार, ब्यावर (अ ज मे र)

मूल्य : [redacted] रुपए 6

 पुस्तक :

श्री मदन्तकृद्दशाग सूत्र
(आठवा अग)

 प्रेरक

सेवाभावी प० श्री मन्नालालजी म०
अवधानी प० श्री अशोक मुनि जी म०

 मुद्रण निर्देशक .

श्रीचन्द सुराना 'सरस' आगरा

 द्वितीय आवृत्ति

२८ फरवरी १९७०

 सम्पादक :

उपाध्याय पं० मुनि श्री प्यारचंदजी महाराज

 प्रकाशक :

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
मेवाडी बाजार, ब्यावर (राजस्थान)

 मुद्रक :

रामनारायण मेड़तवाल
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस, आगरा

 मूल्य :

चार रुपए मात्र

प्रकाशकीय

अन्तगड सूत्र की यह नवीन आवृत्ति पाठको के हाथ में सौपते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। वे भाग्यशाली आत्माएं जिन्होने जिनेन्द्र देव की वाणी सुन कर परम वैराग्य भाव पैदा किया। अपने सन्मुख हुए विपुल वैभव एव भोग सामग्रियो को तुच्छ समझ उन्हें ठुकरा कर भगवान् के चरणो मे सयम की आराधना की। अत्यत दुष्कर तपाराधन कर आठ कर्मो का क्षय कर आत्मा की अन्तिम मंजिल सिद्ध रूप प्राप्त किया। उन वंदनीय आत्माओ का चरित्र पर्युपण के पावन पर्व पर सुनाया जाता है। स्थानकवासी जैन समाज के प्रायः प्रत्येक वर्ग में इसके पठन की परंपरा है। उन महान वैरागी आत्माओ का चरित्र कर्म-विजय में प्रेरणा रूप है।

सेवाभावी श्री मन्नालालजी महाराज एवं मधुरवक्ता अवधानी प० श्री अशोक मुनि जी महाराज सा० की सुकृपा का फल है कि यह सूत्र स्वाध्याय प्रेमियो को द्वितीय आवृत्ति होकर पुनः उपलब्ध हो रहा है।

आशा है स्वाध्याय प्रेमी इससे लाभ उठायेगे।

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय

अध्यक्ष
लक्ष्मीचद तलेसरा

मत्री
अभयराज नाहर

श्री अन्तगढ सूत्र के अग्रिम ग्राहकों की शुभ नामावली:—

सूत्र प्रति	दानी महानुभाव .—	
१६७	श्री दीपचन्दजी चुन्नीलालजी बागरेचा	बेंगलोर
१००	,, केशरीमलजी सिंघवी की धर्मपत्नी रूपीबाई	अन्डरसनपेट K.G.F.
१००	,, जयवंतराजजी बोहरा की धर्मपत्नी मैनाबाई	राबर्टसनपेट K.G.F.
१००	,, उदयराजजी घीसूलालजी छाजेड	राबर्टसनपेट K.G.F.
१००	,, दगडूलालजी पगारिया	औरंगाबाद
६०	,, पुखराजजी साखला की धर्मपत्नी सोहनबाई	अन्डरसनपेट K.G.F.
५०	,, जयचंदजी निहालचदजी धोका	बेंगलौर
५०	,, सोहनलालजी की धर्मपत्नी विमलाबाई	राबर्टसनपेट K.G.F.
२५	,, मोतीलालजी भडारी की धर्मपत्नी लीलाबाई	दौड

श्री मदन्तकृद्दशाङ्ग-सूत्रम्

(पीयूपधारा टीका सहित)

प्रथम वर्ग

मूलः—तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं नयरी होत्था, वण्णओ। तत्थ णं चंपाए नयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था। वणसंडे वण्णओ। तीसे णं चंपाए नयरीए कोणिए नामं राया होत्था। महया हिमवंत० वण्णओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मे थेरे जाव पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामानुगामं वइज्जमाणे सुहं सुहेणं विहरमाणे जेणेव चंपा नयरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव समोसरिए। परिसया निग्गया जाव परिसया पडिगया। तेणं कालेणं तेणं

समएणं अज्जुसुहम्मस्स अंतेवासी अज्ज जंबू जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स णं भन्ते ! अंगस्स अंतगडदसाणं समणेणं जावं संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

भावार्थ—पञ्चम आरे के प्रारम्भ मे, श्री भगवान् महावीर स्वामी के प्रथम पट्टाधीश, सुधर्मास्वामी के समय मे, 'चम्पा' नामक एक नगरी थी, जो बड़ी सुन्दर और मनोहर थी। इसकी सुन्दरता का सविस्तर वर्णन, यदि कोई पाठक चाहें तो औपपातिक सूत्र मे, अवलोकन करे। इस नगरी के उत्तर और पूर्व दिशा के मध्य ठीक ईशान कोण में, 'पूर्णभद्र' नामक एक मनोहर उपवन, विविध प्रकार के वृक्षो से सुशोभित था। उस 'चम्पा' नगरी में, उस समय 'कोणिक' नामक एक राजा राज्य करते थे। ये अपने समय के एक बहुत ही बड़े राजा थे। अपने राज्य—कार्य का सञ्चालन वे न्याय, नियम और नीति के अनुसार करते थे। उसी समय, स्थविर आर्य श्री सुधर्मास्वामी, अपने पाँच सौ[1] शिष्यों के परिवार के साथ, नियमानुसार एक ग्राम से दूसरे ग्राम में, सुखपूर्वक

१—'पांच सौ शिष्यो के साथ' का अभिप्राय यह है कि उस समय उनके अधिकार मे ५०० शिष्य थे। अर्थात् ५०० शिष्य श्री सुधर्मा स्वामी की आज्ञा से विचरत थे। इसका अर्थ यह नही है, कि ५०० शिष्य हर समय उनके साथ रहते थे।

विहार करते हुए, उसी पूर्ववर्णित ' चम्पा ' नगरी के 'पूर्णभद्र ' उद्यान मे पधारे ।

श्री सुधर्मास्वामी के पदार्पण का शुभ सन्देश पाकर, नगर-निवासी लोग स्वामीजी की अमृतमयी वाणी श्रवण करने के लिए उपस्थित होने लगे। स्वामीजी ने धर्म की खूब ही विवेचना की, जिसे सुनकर श्रोता-समाज मुग्ध हो गया । व्याख्यान के समाप्त हो जाने के पश्चात्, जनता पुनः लौट कर शहर में आई ।

उसी समय, आर्य श्री सुधर्मास्वामी के शिष्य श्रीजम्बूस्वामी ने अपने गुरु की सेवा मे विनयपूर्वक कहा, "भगवन् ! धर्म का उत्थान करने वाले श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी ने, जो मुक्ति मे पधार गये है, उन्होने सातवे अङ्ग उपासकदशाङ्ग का, जो भाव फरमाया है, वह तो मैने आपके श्री–मुख से श्रवण किया, किन्तु आठवाँ अङ्ग, जो 'अन्तगडदशा' है, उसका क्या तात्पर्य है ? अर्थात् उसमे किन-किन बातों का वर्णन है, वह कृपा करके फर्मावे ।"

मूलः—एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अन्तगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता । जइ णं भंते समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झ-

यणा पण्णत्ता ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—गोयम समुद्द सागर, गंभीरे चेव होइ थिमिते य । अयले कंपिल्ले खलु, अक्खोभ पसेणती विण्हू ॥ १ ॥

भावार्थ.—हे जम्बू ! भगवान् महावीर स्वामी ने श्री अन्तगड सूत्र के आठ वर्ग फर्माये है । तब जम्बूस्वामी ने विनय पूर्वक पूछा, कि 'हे स्वामी ! कृपा कर यह फर्मावे कि प्रथम वर्ग के कितने अध्ययन फर्माये है ?' तब श्री सुधर्मा स्वामी ने फर्माया, कि हे जम्बू ! भगवान् महावीर स्वामी ने प्रथम वर्ग के दस अध्ययन फर्माये है । उनके नाम क्रमश इस प्रकार हैः—

(१) गौतम (२) समुद्र (३) सागर (४) गम्भीर (५) स्थिमित (६) अचल (७) काम्पिल्य (८) अक्षोभ (९) प्रसेन और (१०) विष्णुकुमार ।

मूलः—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा गोयम जाव विण्हू । पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं

समएणं बारवईणामं नयरी होत्था, दुवालस जोयणायामा णवजोयण वित्थिण्णा धणवइ-मइनिम्माया चामीकरपागारा नाणामणिपंचवण्णकविसीसगपरिमंडिया सुरम्मा अलकापुरि-संकासा पमुदियपक्कीलिया पच्चक्खं देवलोगभूया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

भावार्थः—हे भगवन् ? श्री महावीर स्वामी ने प्रथम वर्ग के गौतम, विष्णु आदि नामवाले, जो ये दस अध्ययन फर्माये है, इन में से प्रथम अध्ययन मे क्या भाव फर्माया है ? कृपा करके कहिए ।

"जम्बू ! चौथे आरे में, अरहन्त अरिष्टनेमि भगवान् के समय मे, द्वारिका नामक एक सुन्दर नगरी थी, जिस की लम्बाई बारह योजन और चौड़ाई नौ योजन थी । उस नगरी की रचना कुबेरदेव ने की थी । उस का ग्राम-कोट (परकोटा) स्वर्ण का बना हुआ था । और उसके ऊपर पञ्च प्रकार के रत्नों द्वारा जड़ित कगूंरे शोभायमान थे। वह द्वारिका नगरी कुबेर की नगरी के समान देदीप्यमान थी । देवलोक के समान दर्शको के चित्त को आकर्षित करने वाली तथा परम सुन्दर दर्शनीय नगरी थी । दर्शको का प्रतिबिम्ब उस नगरी में पडता था । और, नगरी का प्रतिबिम्ब, निकटस्थ जलाशय मे । इस लिए वह द्वारिका नगरी वास्तव में अपने नाम 'द्वारिका' को सोलह आना सिद्ध कर रही थी ।

मूलः—तीसे णं बारवईणयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं रेवयए नामं पव्वए होत्था, वण्णओ। तत्थ णं रेवयए पव्वए नंदणवणे नामं उज्जाणं होत्था, वण्णओ, सुरप्पिए णामं जक्खायतणे होत्था, पोराणे, से णं एगेणं वणसंडेणं परिक्खित्ते, असोगवर-पायवे। तत्थ णं बारवईणयरीए कण्हे णामं वासुदेवे राया परिवसइ। महया० रायवण्णओ। से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं, बलदेवपामोक्खाणं पंचण्हं महावीराणं, पज्जुण्णपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं, संबपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दंतसाहस्सीणं, महसेणपामोक्खाणं छप्पण्णाए बलवग्गसाहस्सीणं, वीरसेणपामोक्खाणं एगवीसाए वीर साह-स्सीणं उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं रायसाहस्सीणं, रुप्पिणिपामोक्खाणं सोलसण्हं देवि-साहस्सीणं, अणंगसेणापामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं, अण्णेसिं च बहूणं ईसर जाव सत्थवाहाणं बारवईए नयरीए अद्ध भरहस्स य सीमंतयाय समत्थस्स आहेवच्चं जाव विहरई।

भावार्थ—उस द्वारिका नगरी के ईशान कोण की ओर, 'रैवत' नामक एक पर्वत था। और उस पर्वत पर 'नन्दन-वन' नामक एक उपवन। उस उपवन मे, 'सुर-प्रिय' नामक एक यक्ष का बडा ही प्राचीन स्थान था। उस स्थान के चहुँ ओर एक विशाल वन-खण्ड था। जिसमे अनेक अशोक वृक्षो की अपूर्व छटा लहरा रही थी। उस समय उस द्वारिका नगरी मे, श्री वासुदेव 'कृष्ण' राजा राज करते थे। वे तीन खण्ड के सम्राट थे। वहाँ समुद्रविजय, आदि परस्पर एक दूसरे की समता रखने वाले दस राजा और भी थे। वलदेवजी, आदि पाँच महावीर पुरुप थे। प्रद्युम्न, आदि साढे तीन करोड़ कुमार थे, महासेन, आदि छप्पन हजार साहसिक योद्धा पुरुप थे। वीरसेन, आदि इक्कीस हजार वीर पुरुप थे। उग्रसेन, आदि सोलह हजार माण्डलिक राजा थे। रुक्मणी, आदि सोलह हजार कृष्ण महाराज की रानियाँ थी। नृत्य-कला मे प्रवीण अनगसेना आदि वेश्याएँ थी। और भी अनेक धनाढ्य सेठ, साहूकारादि लोग वहाँ निवास करते थे। ऐसी महान् समृद्धिशाली द्वारिका नगरी मे, श्री कृष्ण महाराज अर्द्ध भरत मे, वैताढ्य गिरि पर्यन्त, अर्थात् तीन खण्ड मे राज्य करते थे।

मूलः—तत्थ णं वारवईए नयरीए अंधगवण्हिणामं राया परिवसइ महया हिमवंत० वण्णओ। तस्स णं अंधगवण्हिस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था, वण्णओ। ततेणं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि एवं जहा महब्बले। सुमिणदं-

सण कहणा, जम्मं बालत्तणं कलाओ य। जोवणपाणिगाहणं, कंता पासाय भोगाय ॥१॥ णवरं गोयमो नामेणं अट्ठण्हं रायवरकन्नाणं एगदिवसेणं पाणिंगेण्हावेंति अट्ठट्ठओ दाओ।

भावार्थः—उस द्वारिका नगरी में, अन्धक-वृष्णि नामक एक बड़े जागीरदार राजा राज्य करते थे। उस राजा के 'धारिणी' नामक एक रानी थी। यह रानी एक दिन शयनागार में सो रही थी। पिछली रात्रि में एक शुभ स्वप्न उसे आया। तदनुसार, पूरे नौ मास और दस दिन बीत जाने पर, एक बालक-रत्न का जन्म उसकी कोंख से हुआ। बालक के जन्म, बाल्य-काल, शिक्षा-प्राप्ति आदि का वर्णन, पाठकवृन्द महाबल की तरह समझ लें। विशेष केवल इतना ही है, कि उनका नाम गौतम कुमार रक्खा गया। जब वे तरुण हुए, उनका विवाह आठ कन्याओं के साथ कर दिया गया। वधू-पक्ष की ओर से आठ करोड का दहेज उन्हें मिला।

मूलः—तेणं कालेणं तेणं समए णं अरहा अरिट्ठनेमी आइगरे जाव विहरइ, चउव्विहा देवा आगया, कण्हे विणिग्गए। तते णं तस्स गोयमस्स कुमारस्स जहा मेहे तहा णिग्गए, धम्मं सोच्चा णिसम्म जं नवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आ पुच्छामि देवाणुप्पियाणं अंतिए पव्वयामि, एवं जहा मेहे जाव अणगारे जाए इरियासमिए जाव इणमेव निग्गंथं पावयणं

पुरओ काउं विहरइ । ततेणं से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स तहा रूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस्स अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरई । तए णं अरिहा अरिट्ठनेमी अण्णया कयाइ बारवईओ नयरीओ नंदणवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमइत्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

भावार्थ.–उस समय एक बार अरहन्त अरिष्टनेमि भगवान् ने गाँव-गाँव विचरण करते हुए, द्वारिका के बाग में पदार्पण किया । शहर मे सूचना होते ही, वहाँ की जनता भगवान् के दर्शनार्थ बरसाती नदी की भाँति उमड पडी । भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी, और वैमानिक देव भी उनके दर्शन को आए । सम्राट् श्री कृष्ण महाराज भी पधारे । गौतम कुमार को सूचना मिलने पर वे भी दर्शनार्थ गये । भगवान् का प्रवचन सुनकर, वहीं उन्हे वैराग्य प्राप्त हो गया । तब वे भगवान् से बोले-"प्रभो ! मै अपने माता-पिता से पूछकर, आपसे दीक्षा ग्रहण करूँगा ।" ऐसा कहकर कुमार बड़े ही हर्ष के साथ घर पर आये । माता-पिता से आज्ञा उन्होंने मांगी । माता-पिता ने कुमार को बहुत कुछ समझाया; परन्तु उन्होने किसी की भी एक बात न मानी, अन्त मे बड़े ही समारोह से, मेघ कुमार की भाँति उनकी भी दीक्षा हो गई । अब कुमार साधु बनकर ईर्यासमिति, आदि पाँच समिति,

तीन गुप्ति, एवं निर्ग्रन्थप्रवचन को आगे रखकर विचरने लगे ।

उन गौतम अणगार ने अल्प समय मे ही अरहन्त अरिष्टनेमि भगवान् के स्थविर मुनियो से, सामायिक से लगा कर ग्यारह अंग पर्यंत ज्ञान सम्पादन कर लिया । साथ ही साथ, उपवास से लगाकर, अनेको भाँति की तपश्चर्या करते हुए, आत्मानन्द मे लीन रहने लगे । भगवान् अरिष्टनेमि एक दिन उस द्वारिका के 'नन्दनवन' से विहार कर, देश-विदेश के भव्य जीवो को उपदेश देते हुए मुक्ति का पन्थ उन्हे दिखाने के हेतु, अन्यत्र पधार गये ।

मूलः—तते णं से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइ जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ २ त्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेत्तए । एवं जहा खंदओ तहा बारस भिक्खुपडिमाओ फासेइ, फासित्ता, गुणरयणं पि तवोकम्मं तहेव फासेइ निरवसेसं, जहा खंदओ तहा चिंतेइ, तहा आपुच्छइ, तहा थेरेहिं सद्धिं सेत्तुंजं दुरूहइ, मासियाए संलेहणाए बारस वरिसाइं परिताए जाव सिद्धे ।

भावार्थ—एक दिन गौतम अणगार ने भगवान् अरिष्टनेमि के समीप आकर, उनकी क्रमशः तीन वार प्रदक्षिणा तथा स्तुति की। और विनयपूर्वक वन्दना करके निवेदन किया—

हे प्रभो ! 'मेरी इच्छा है, कि "मै मासिक-भिक्षु-पडिमा-तप' स्वीकार कर, आपकी आज्ञा हो, तो विचरण करूँ।" इस पर भगवान् ने उन्हे फर्माया, कि "जिस प्रकार भी तुम्हे सुख हो, वैसा करो।"

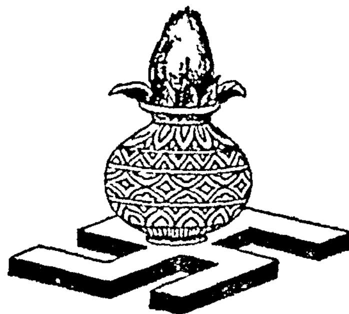
फिर गौतम अणगार ने प्रथम पडिमा से बारह भिक्षु की पडिमा पर्यंत, खन्दक मुनि की भाँति घोर तप किया। तत्पश्चात् 'गुणरत्न' नामक तपस्या भी उन्होने की। जिस प्रकार खन्दकजी ने सथारा किया था, उसी प्रकार ये भी भगवान् से पूछकर और स्थविर मुनिवरों को साथ ले, शत्रुञ्जय पहाड़ पर गये। और, वहाँ एक मास का सथारा कर, अन्तिम समय में, सर्व कर्मों को नष्ट करते हुए मुक्ति मे पधार गये।

मूलः—एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव सपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमवग्गस्स पढम अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। एवं जहा गोयमो तहा सेसा वण्हिपिया धारिणी माता समुद्दे, सागरे, गंभीरे, थिमिए, अयले, कंपिल्ले, अक्खोभे, पसेणई विण्हुए एए एगगमा। पढमो वग्गो दस अज्झयणा पण्णत्ता।

भावार्थ—हे जम्बू ! भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगड-सूत्र के प्रथम-वर्ग के प्रथम अध्याय में यही

वर्णन किया है । इसी प्रकार उन्होंने दूसरे अध्याय में समुद्र कुमार का, तीसरे में सागर का, चौथे में गम्भीर का पाँचवे में स्थिमित का, छठे में अचल का, सातवे में काम्पिल्य का, आठवे में अक्षोभ का, नवे में प्रसेन का, और दशवे मे विष्णु का वर्णन किया है । इन सभी की कथा गौतम कुमार की भाँति ही वर्णन की गई है । इन नवो के पिता का नाम 'वह्नि' और माता का नाम 'धारिणी' था ।

। इति प्रथमो वर्गः ।



द्वितीय वर्ग

मूल:—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते । दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता । तं जहा—अक्खोभ, सागरे, खलु समुद्द, हिमवंत, अचल णामे य । धरणेय पूरणे वि य; अभिचंदे चेव अट्ठमए ॥१॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं वारवईए णयरीए वण्हि पिया धारिणी माया । जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा गुणरयणतवोकम्मं सोलह वासाइ परियाओ सेत्तुंजे मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धे । एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अमट्ठस्स अंगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

भावार्थ —भगवन् ! श्री अनन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग में भगवान् महावीर स्वामी ने जो वर्णन किया है, वह आनन्दपूर्वक आपके श्रीमुख से मैने श्रवण किया । लेकिन, दूसरे वर्ग मे कितने अध्याय है और उनमें किस विपय का प्रतिपादन किया गया है, सो कृपा करके अब फर्मावे ।

'हे जम्बू ? भगवान् ने दूसरे वर्ग में अक्षोभ, सागर, समुद्र, हिमवन्त, अचल, धरण, पूरण, और अभिचन्द, इन आठ अध्यायों का क्रम-पूर्वक वर्णन किया है । अतः ध्यान पूर्वक श्रवण करो ।

श्री अरहन्त अरिष्टनेमि भगवान् के समय, 'द्वारिका' में, अन्धकवृष्णि नामक एक राजा जागीरदार के रूप मे राज्य करते थे । उनकी धारिणी नामक एक बड़ी ही आज्ञाकारिणी रानी थी । उनके अक्षोभ, सागर, समुद्र, हिमवन्त, अचल, धरण, पूरण और अभिचंद ये आठ पुत्र-रत्न थे । इन आठों कुमारों ने भगवान् श्री अरिष्ट नेमि के सदुपदेश से दीक्षा धारण की । और गुण-रत्न संवत्सर तप, आदि अनेक प्रकार की बड़ी ही घोर तपश्चर्या की । इस प्रकार सोलह वर्ष पर्यन्त चारित्र-पालन कर कर्मो को क्षय करते हुए वे भी मुक्ति को प्राप्त हुए । जिस प्रकार श्री गौतम कुमार का वर्णन किया है, उसी प्रकार आठ अध्यायों में इन आठों कुमारों ने भी अपने जीवन को पवित्र किया । इस प्रकार हे जम्बू ! भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्र के दूसरे वर्ग का वर्णन किया है ।

। इति द्वितीयो वर्गः ।

तृतीय वर्ग

मूलः—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ! तच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—अणीयसेण, अणंतसेणे, अजियसेण, अणिहयरिउ, देवसेणे, सत्तुसेणे, सारणे, गए, सुमुहे, दुम्मुहे, कूवए, दारुए, अणादिट्ठी। जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स, अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता तं जहा अणीयसेण जाव अणादिट्ठी। पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते।

भावार्थ—हे भगवन् ! श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी ने आठवें अंग के दूसरे वर्ग के आठों अध्ययनों में, जिस प्रकार आठ कुमारों की मुक्तावस्था का वर्णन किया है, उसे श्री मुख से आनन्द पूर्वक मैने श्रवण कर लिया अब कृपा कर के, तीसरे वर्ग का वर्णन फर्मावे ।

हे जम्बू ! तीसरे वर्ग मे, तेरह अध्ययन है । उन में अणीयसेन, अनन्तसेन, अजितसेन, अनिहत रिपु, देव-सेन, शत्रु-सेन, सारण, गज-सुकुमार, सुमुख, दुर्मुख, कूपक, दारुक, और अनादृष्टि इन तेरह कुमारों का वर्णन किया गया है ।

भगवन् ! इन तेरह अध्यायों मे से अब प्रथम अध्याय का क्या तात्पर्य है, सो कृपा करके फर्मावे ।

मूल:—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे णामं णयरे होत्था, रिद्धि-त्थिमिय समिद्धे वण्णओ । तस्सं णं भद्दिलपुरस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सिरिवणे णामं उज्जाणे होत्था, वण्णओ जियसत्तू राया । तत्थणं भद्दिलपुरे णगरे नागे णामं गाहावई होत्था, अड्ढे जाव अपरिभूए । तस्स णं नागस्स गाहावइस्स सुलसा णामं भारिया होत्था, सुकुमाला जाव सुरुवा । तस्स णं नागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए भारि-

याए अत्तए अणीयसेण णाम कुमारे होत्था। सुकुमाले जाव सुरूवे पंचधाइ परिक्खित्ते। तं जहा—खीरधाई जहा दढपइन्ने जाव गिरिकंदर मल्लीणेव चंपगवरपायवे सुहं सुहेणं परिवड्ढइ।

भावार्थ—हे जम्बू! अरहन्त अरिष्टनेमि भगवान् के समय, भद्दिलपुर नामक एक नगर अपनी अटूट सम्पत्ति की गुण-गरिमा से सुशोभित था। नगर से कुछ ही दूर पर, ईशान दिशा मे, अपने नाम को यथार्थ रूप से चरितार्थ करने वाला, समस्त उपवनो की जीवित श्री की भाँति 'श्रीवन' नामक एक अति ही सुन्दर और सुरम्य उद्यान था। उस समय भद्दिलपुर मे राजा जित-शत्रु राज करते थे। उसी नगर में 'नाग' नामक एक महान समृद्धिशाली गाथापति निवास करता था। वह भी अटूट लक्ष्मी का स्वामी था और उसके 'सुलसा' नामक एक बड़ी ही सुकुमार परम सुन्दरी धर्मपत्नी थी। उस 'नाग' नामक गाथापति के पुत्र अणीयसेन का, पाच प्रकार की धायों ने दृढप्रतिज्ञ (दढपइन्ने) की भाँति, आधि व्याधियों से रक्षा करते हुए, जिस प्रकार पर्वत की गुफाओ मे चम्पक वृक्ष सुरक्षित रहकर हरा-भरा होता है, ठीक उसी प्रकार, उस पुत्र का लालन-पालन किया था।

मूल:—तते णं तं अणीयसं कुमारं साइरेग अट्ठवासजायं अम्मापियरो कलायरिय जाव भोगसमत्थे जाए यावि होत्था। तते णं तं अणीयसं कुमारं उम्मुक्कबालभावं जाणेत्ता अम्मापियरो सरिसियाणं सरिसव्वयाणं सरिसलावण्णरूवजोवणगुणोववेयाणं सरिसेहिंतो कुलेहिंतो

आणिल्लियाणं वत्तीसाए इब्भवरकण्णगाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेइ ।

भावार्थ —उस अणीयसेन नामक कुमार को आठ वर्ष की अवस्था के पश्चात् एक कलाकोविद के द्वारा योग्य विद्याध्ययन कराया गया । कुमार वहत्तर कलाओ मे निष्णात हो गया । यौवनावस्था प्राप्त होने पर माता-पिता ने उसका विवाह, एक बडे ही श्रेष्ठ कुल के, बत्तीस इभ्य सेठ की, कुमार के समान अवस्था चतुराई, रूप और गुणो मे निपुण, ऐसी बत्तीस कन्याओ के साथ कर दिया ।

मूल:—ततेणं से नागे गाहावई अणीयस्स कुमारस्स इमं एयारूवा पीतिदाणं दलयइ, तं जहा—वत्तीसं हिरण्णकोडीओ जहा महब्बलस्स जाव उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ । तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जाव समोसढे सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरूवं उग्गहं जाव विहरइ, परिसा णिग्गया । तते णं तस्स अणीयसस्स कुमारस्स महया जणसद्दं जहा गोयमे तहा नवरं सामाइयमाइयाइं चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ वीसं वासाइं परियाओ सेसं तहेव जाव सेत्तुंजे पव्वए मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धे । एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स

वग्गस्स पढम अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

भावार्थः—विवाह मे प्रत्येक वधू-पक्ष की ओर से एक-एक करोड सोनेये दहेज के रूप मे प्राप्त हुए । इ का सविस्तर वर्णन महावल के चरित से जाना जा सकता है । अणीयसेन कुमार भी विवाह के पश्चात्, अपने विशाल राज-प्रासाद मे, अनेक भाँति की अठखेलियाँ करते हुए, मृदङ्ग की ध्वनि से मत्त वन अपने जोवन को आमोद-प्रमोद मे व्यतीत करने लगे । जीवन के इसी स्वच्छन्द समय मे, श्री अरिहत अरिष्टनेमि प्रभु उस नगरी के 'श्रीवन' नामक उद्यान मे पधारे । जन समूह दर्शनों के लिए उमड पडा । यह दृश्य देख कर, अणीयसेन कुमार भी महाबल की तरह भगवान् के दर्शनार्थ 'श्रीवन' उद्यान मे उपस्थित हुए । प्रभु के दर्शन कर, उन्होने उपदेश श्रवण किया । और गौतम कुमार की भाति ही उन्होने भी दीक्षा धारण कर ली । स्वल्प काल मे ही, सामायिक आदि चौदह पूर्व का ज्ञान सम्पादन किया । वीस वर्प तक चारित्र-पाल कर, अन्तिम समय मे, एक मास का सन्थारा करते हुए मोक्ष पद को प्राप्त किया । हे जम्बू ! भगवान् ने श्री अन्तगड सूत्र के तोसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन मे यही वर्णन किया है ।

मूल —एवं जहा अणीयसे एवं सेसा वि अणंतसेणो अजियसेणो अणिहयरिऊ देवसेणे सत्तुसेणे छ अज्झयणा एक्कगमा, बत्तीसाओ दाओ, वीसं वासा परियाओ, चोद्दस पुव्वाइं

अहिज्झंति सेत्तुंजे जाव सिद्धा। छट्ठमज्झयणं समत्तं।

जइ णं भंते! उक्खेवओ सत्तमस्स। तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए जहा पढमे नवरं वसुदेवे राया, धारिणी देवी सीहो सुमिणे, सारणे कुमारे, पण्णासओ दाओ, चोद्दस्स पुव्वा, वीसं वासापरियाओ, सेसं जहा गोयमस्स जाव सेत्तुंजे सिद्धे।

भावार्थः—जम्बू! जिस प्रकार अणीयसेन कुमार का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार अनन्तसेन, अजित-सेन, अनिहत-रिपु, देव-सेन, और शत्रुसेन, आदि पांचों कुमारों ने भी दीक्षा धारण कर मुक्ति प्राप्त की। ये छहों कुमार भद्दिलपुर के 'नाग' नामक गाथापति के सुपुत्र और परस्पर सहोदर भ्राता थे। इनकी भी धूमधाम से बत्तीस-बत्तीस कन्याओ के साथ शादी हुई थी और प्रत्येक को बत्तीस-बत्तीस करोड़ का दहेज प्राप्त हुआ था। परन्तु सच्ची लगन के सामने, संसार के सभी बन्धन शिथिल पड़ जाते है। सब कुमारों ने दीक्षा ग्रहण की। तथा चौदह वर्ष चारित्र-पालन कर अन्त में एक मास का सन्थारा धारण किया और मुक्त हो गए। यहां तक ये छः अध्ययन पूरे हो गये।

हे जम्बू! चौथे आरे में, 'द्वारिका' नगरी थी। उस में, राजा वसुदेव अपनी रानी धारिणी सहित राज्य करते थे। एक दिन रानी को सिंह का शुभ स्वप्न दिखाई दिया। और, उस स्वप्न के कुछ ही काल के पश्चात्

राजा वसुदेव के घर में, राणी धारिणी की कोख से एक पुत्रोत्पत्ति का मङ्गलमय आनन्द छा गया। कुमार का नाम सारण रक्खा गया। कुमार का बाल्यकाल मे विद्याध्ययन, और यौवनावस्था मे पचास कन्याओं के साथ विवाह कराया गया। वे भी अरंहत अरिष्टनेमि भगवान् का सदुपदेश श्रवण कर दीक्षित हुए। चौदह वर्ष के अविरल परिश्रम से उन्होने चौदह पूर्वो का ज्ञानाध्ययन किया। और, बीस वर्ष का चारित्र-पालन कर अन्त में एक मास का सन्थारा ले, मुक्त हो गये। विशेप वर्णन गौतम कुमार की भॉति ही यहॉ भी समझे।

मूलः—जइ णं भंते ! उक्खेओ अट्ठमस्स। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए जहा पढमे जाव अरहा अरिट्ठनेमी सामी समोसढे। तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतेवासी छ अणगारा भायरो सहोदरा होत्था। सरिसया सरित्तया सरिसव्वया नीलुप्पलगवल गुलियअयसिकुसुमप्पगासा सिरिवच्छंकियवच्छा कुसुमकुंडल भद्दलया नलकुब्बरसमाणा। तए णं ते छ अणगारा जं चेव दिवसं मुंडा भवेत्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसई णमंसइत्ता एवं वयासी-इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं

तवकम्म संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरित्तए ! अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ! तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरंती ।

भावार्थ:—भगवन् ! सातवे अध्ययन मे भगवान् महावीर स्वामी ने जो कथन किया है, वह आपने फर्माया और मैने उसे सुरुचि तथा श्रद्धा के साथ श्रवण किया । किन्तु आठवे अध्ययन में जो वर्णन उन्होने किया है, मेरा मन उसे श्रवण करने के लिए बड़ा ही लालायित है । अत: उसे श्रवण करा के मेरे कान तथा मन की पिपासा को मिटाने की कृपा कीजिए ।

हे जम्बू ! उस समय मे, 'द्वारिका' नाम की नगरी थी । जिसका वर्णन पहले कर आये हैं । उसी द्वारिका नगरी मे, ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए एकदिन श्री अरहन्त अरिष्टनेमि भगवान् पधारे । उस समय भगवान् के साथ छ: शिष्य थे । वे छहो शिष्य परस्पर सहोदर भाई थे । इनका रंग, रूप, तथा अवस्था एक सी थी । उनका वर्ण नीलोत्पल कमल, भैंस के सीग के अन्दर के भाग, एवं अलसी के फूल के समान सुन्दर था । इनका वक्ष:स्थल श्रीवत्स साथिया से सुशोभित था । फूलों के ढेर के समान उनका शरीर कोमल और सुकुमार था । इस प्रकार वे छहों मुनि कुबेर के पुत्र की भाँति सुन्दर शरीरधारी थे । जिस दिन इन छहों सहोदर भाइयों ने

दीक्षा धारण की थी, अर्थात् ससार की मोह-माया को छोड़-छाड कर, जिस दिन ये मुनि-पद के अधिकारी बने थे, उसी दिन इन्होंने श्री अरिष्टनेमि भगवान् को वन्दना कर निवेदन किया था कि-'भगवन् ! हमारी ऐसी इच्छा है, कि यदि आप की आज्ञा हो, तो हम निरन्तर जीवन-पर्यन्त बेले-बेले की तपश्चर्या में अपनी आत्मा को लीन करते हुए विचरण करे।' भगवान् ने फर्माया-जिस प्रकार तुम्हे सुख हो, वैसा ही करो। इसमें तनिक भी विलम्ब न करो। आज्ञा होने पर छहो मुनिराज बेले-बेले की तपश्चर्या कर, आत्मानन्द में रमण करते हुए, विचरण करने लगे।

मूलः—तए णं ते छ अणगारा अण्णया कयाइं छट्ठक्खमणपारणंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ जहा गोयम सामी जाव इच्छामो णं भंते ! छट्ठक्खमणस्स पारणाए तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए नयरीए जाव अडित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया! तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसइ २ त्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियाओ सहस्संववणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमंति पडिनिक्खमित्ता तिहिं संघाडएहिं अतुरियं जाव अडंति।

भावार्थः—उसके पश्चात्, वे छहो अणगार, एक दिन, बेले के पारणे में, प्रथम प्रहर के समय स्वाध्याय कर

गौतम स्वामी की तरह, भगवान् के निकट आ कर बोले-"भगवन् ! यदि आपकी आज्ञा हो तो बेले के पारणे के लिए हम छहों मुनि तीन सिंघाड़ों (तीन भागों) में बॅट कर द्वारिका में गोचरी के लिए जावे ।" भगवान् ने शीघ्र ही आज्ञा प्रदान की, कि जैसा भी तुम्हे सुखकर जान पडता हो, करो । इस प्रकार छहों अणगारो ने भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर, उन्हे वन्दना की । फिर सहस्राम्र वन से निकलकर तीनों विभागो ने विधि-युक्त शनैः शनैः द्वारिका की तरफ भिक्षार्थ प्रस्थान किया ।

मूलः—तत्थ णं एगे संघाडए बारवईए णयरीए उच्चनीयमज्झमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए गेहे अणुपविट्ठे । तए णं सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइत्ता हट्ठ तुट्ठ जाव हियया आसणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ २ त्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ २ त्ता वंदइ णमंसइ २ त्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता, सीह केसराणं मोयगाणं थालं भरेइ २ त्ता ते अणगारे पडिलाभेइ २ त्ता वंदई णमंसइ २ त्ता पडिविसज्जेइ ।

भावार्थः—उन तीनो सिघाड़ों (विभागो) मे से एक सिघाड़ा द्वारिका नगरी के धनाढ्य, गरीब और साधारण

स्थितिवाले घरो में, अथवा क्षत्रिय, वैश्य और कृषक कुलों में क्रमश. भिक्षार्थ भ्रमण करते-करते, राजा वसुदेव के राजमहल मे, जहाँ देवकी निवास करती थी, प्रविष्ट हुआ। देवकी महारानी, अणगारों को अपने द्वार की ओर आते हुए देखकर बडी ही प्रसन्न हुई। और, अपने आसन से उठकर, अत्यन्त आदर-पूर्वक स्वागतार्थ सात-आठ कदम अणगारो के सम्मुख गईं। तथा, तीन बार उन्हे अपने हाथों से प्रदक्षिणा करते हुए, वन्दना की। फिर जिस ओर भोजन-गृह था, उस ओर मुनियो को लाईं। और, सिह-केसर-मोदक, जो अनेक पौष्टिक पदार्थो के सयोग से श्री कृष्ण महाराज के कलेवे के लिए तैयार किये हुए थे और जिन्हे कृष्ण महाराज प्रतिदिन प्रात काल कलेवे मे लिया करते थे। उन्ही मोदको का थाल भरकर, देवकी महारानी ने मुनिराजों को बहराया और सादर वन्दना कर, उन्हे विदा किया।

मूलः—तदाणंतरं च णं दोच्चे संघाडए बारवईए नयरीए उच्च जाव विसज्जेइ। तयाणंतरं च णं तच्चे संघाडए बारवईए नयरीए उच्चनीए जाव पडिलाभेइ२त्ता एवं वयासी—किण्णं देवाणुप्पिया! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए नयरीए दुवालसजोयणआयामे पच्चक्खं देवलोगभूयाए समणा निग्गंथा उच्चणीयमज्झमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणा भत्तपाणं णो लभंति? जन्नं ताइं चेव कुलाइं भत्तपाणाए भुज्जो भुज्जो अणुप्पवि-

संति ?

भावार्थः—उस के थोडी देर पश्चात् दूसरा सिघाड़ा (अर्थात् दो मुनियों का समूह) भी उसी नगरी मे, भिक्षार्थ विचरण करते हुए, देवकी के यहाँ आया। उन्हे भी देवकी ने विधि-पूर्वक वही सिह-केसर-मोदक बहरा कर, आनन्द पूर्वक बिदा किया। फिर थोड़ी ही देर में, तीसरा सिघाड़ा भी घूमते-घूमते भिक्षार्थ वहाँ आया। देवकी ने उन्हे भी प्रसन्नता-पूर्वक वही सिह-केसर-मोदक बहराये। फिर वे विनय पूर्वक उन से बोली—"हे देवानुप्रिय ! जहाँ वासुदेव जैसे महा-प्रतापी राजा राज्य कर रहे है, ऐसी स्वर्ग-जैसी महान् द्वारिका नगरी मे, इतने घर होते हुए भी क्या आपको भोजन नही मिला ? जिससे आपको यहाँ तीन बार पधारने का कष्ट उठाना पड़ा।

मूलः—तए णं ते अणगारा देवइं देविं एवं वयासी—णो खलु देवाणुप्पिए ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे वारवईए णयरीए जाव देवलोगभूयाए समणा निग्गंथा उच्चणीय जाव अडमाणा भत्तपाणं णो लभंति, नो चेव णं ताइं ताइं कुलाइं दोच्चं पि तच्चं पि भत्तपाणाए अणुपविसंति। एवं खलु देवाणुप्पिए ! अम्हे भद्दिलपुरे नयरे नागस्स गाहावइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोदरा सरिसया जाव नलकुव्वरसमाणा अरहओ अरिट्ठ-

नेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म संसारभउव्विग्गा भीया जम्मणमरणाणं मुंडा जाव पव्वइया ।

भावार्थ—इतना सुनते ही दोनो मुनियो ने नम्रभाव से कहना प्रारम्भ किया—हे देवानुप्रिये ! कृष्ण वासुदेव की स्वर्ग–जैसी द्वारिका नगरी मे श्रमण साधुओं को क्षत्रिय, वैश्य और कृषकों के घरों से भिक्षा न मिली हो और इसी हेतु वार-वार मुनियों को यहाँ आना पडा, यह बात नही है । किन्तु हे देवानुप्रिये ! भद्दिलपुर नगर में, नाग नामक गाथापति के पुत्र और उनकी सुलसा नामक भार्या के अङ्गज, हम छहो सहोदर भाई है । और, छहो नल-कुवेर के समान एक-से सुन्दर दिखाई देते है । हम छहो सहोदर भाइयों ने भगवान् श्री अरिष्टनेमि का उपदेश श्रवण कर, जन्म-मरण, एवं सासारिक दुखों से भयभीत हो, भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की है ।

मूलः—तएणं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वइया तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदामो नमंसामो इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हामो—इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जाव अहासुहं देवाणुप्पिया । तएणं अम्हे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरामो, तं अम्हे अज्ज छट्ठक्खमणपा-

रणयंसि पढमाए पोरिसीए जाव अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा, तं नो खलु देवाणुप्पिए ! ते चेव णं अम्हे, अम्हे णं अन्ने, देवई देवी वंदइ २ त्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगया ।

भावार्थ—हमने जिस दिन दीक्षा धारण की थी, उसी दिन से भगवान की आज्ञा प्राप्त कर, बेले-बेले की तपश्चर्या करने की प्रतीज्ञा ली है । और, उसी के अनुसार, बेले-बेले पारणा कर रहे है । आज हमारे छहों के बेले का पारणा है । पहले पहर मे स्वाध्याय किया । दूसरे मे ध्यान और तीसरे में भगवान् की आज्ञा लेकर क्षत्रिय, वैश्य और कृषको के यहाँ, भिक्षा के लिये गौतमस्वामी की भाँति भ्रमण करते हुए, तुम्हारे घर पर आये । जो पहले सिघाडा आया था, उसमें हम नही थे । अर्थात् हम छहो भाई पृथक्-पृथक् तीन सिघाडों (विभागो) मे विभक्त होकर, द्वारिका मे, गोचरी के लिए निकले थे । हम ही यहाँ बार-बार नही आये । यह सुन, देवकी ने उन्हे वन्दना की । तथा, मुनियों ने भी अपने स्थान की ओर प्रस्थान किया ।

मूलः—तए णं तीसे देवईए देवीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पन्ने एवं खलु अहं पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं कुमारसमणेणं बालत्तणे वागरिया—तुमं णं देवाणुप्पिए ! अट्ठ पुत्ते पयाइस्ससि सरिसए जाव नल कुब्बर समाणे, नो चेव णं भरहे वासे अण्णओ अम्मयाओ

तारिसए पुत्ते पयाइस्संति तं णं मिच्छा। इमं पच्चक्खमेव दिस्सति भरहे वासे अण्णाओ वि अम्मयाओ खलु एरिसए जाव पुत्ते पयायाओ, तं गच्छामि णं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदामि नमंसामि वंदित्ता नमंसित्ता इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामि त्ति कट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—लहु करणप्पवरं जाव उवट्ठवेंति, जहा देवाणंदा जाव पज्जुवासइ।

भावार्थः—तदनन्तर, श्री देवकी महारानी को इस प्रकार संकल्प-विकल्प उत्पन्न हुए, कि पोलासपुर नगर मे, बाल्यावस्था में ही अइमुत्त (अतिमुक्तक) नामक अणगार ने मुझे ऐसा कहा था, कि "हे देवानुप्रिये! तू, नल कुबेर के समान आठ पुत्रो को जन्म देगी। वैसे पुत्रो को भरत क्षेत्र मे अन्य कोई भी माता जन्म न दे सकेगी।" किन्तु उनका यह कहना मिथ्या हुआ। क्योकि, भरत-क्षेत्र मे अन्य माताओ ने भी तो ऐसे पुत्रो को जन्म दिया है जिनको मै प्रत्यक्ष देख रही हूँ। मगर साधुओ की वाणी कभी निष्फल नही होती, अतः मै जाऊँ और अरिष्टनेमि भगवान् की वन्दना कर, अपने असमजस को मिटाऊँ। ऐसा विचार कर, उसने अपने सेवको को वुलाया और उन्हे एक सुन्दर रथ सजाने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही तुरन्त रथ सहित वे आ प्रस्तुत हुए। तब देवकी ने रथारूढ होकर भगवान् की शरण ली। जिस प्रकार देवानन्दा भगवान् महावीर स्वामी की सेवा मे उपस्थित हुई थी, उसी प्रकार

देवकी भी श्री अरिष्टनेमि भगवान् की सेवा में पहुँची और उन्हे वन्दना कर उनकी सेवा करने लगी ।

मूल:—तए णं अरहा अरिट्ठनेमी देवइं देविं एवं वयासी—से नूणं तव देवई! इमे छ अणगारे पासेत्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए, जाव समुप्पज्जेत्था एवं खलु पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं तं चेव जाव णिग्गासि णिग्गच्छित्ता जेणेव ममं अंतियं हव्वमागया से नूणं देवई देवि ! अत्थे समट्ठे ? हंता अत्थि । एवं खलु देवाणुप्पिए ! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे णयरे णागे णामं गाहावई परिवसइ अड्ढे, तस्स णं णागस्स गाहावइस्स सुलसा णामं भारिया होत्था, सा सुलसा गाहावइणी बालत्तणे चेव निमित्तिएणं वागरिया-एस णं दारिया णिंदू भविस्सइ । तए णं सा सुलसा बालप्पभिति चेव हरिणेगमेसी देव भत्तयायावि होत्था, हरिणेगमेसिस्स पडिमं करेइ २ त्ता कल्लाकल्लिं ण्हाया जाव पायच्छित्ता उल्लपडसाडया महरिहं पुप्फच्चयणं करेइ २ त्ता जानुपाय पडिया पणामं करेइ, तओ पच्छा आहारेइ वा नीहारेइ वा वरइ वा ।

भावार्थ—तदनन्तर, अरहंत अरिष्टनेमि भगवान् ने महारानी देवकी से कहा—हे देवकी ! इन एक सरीखे छहो अणगारों को देखकर, तेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मुझे पोलासपुर नगर में अइमुत्त अणगार ने

जो कहा था, कि "तू ऐसे आठ पुत्रों को जन्म देगी। जिनके समान समस्त भरत क्षेत्र में अन्य कोई भी माता पैदा नही कर सकेगी।" आदि-आदि विचारो मे तल्लीन होकर, तू इसी विपय का मुझसे स्पष्टीकरण करने के लिये यहाँ आई है। क्या, यह बात सत्य है ? उत्तर मे देवकी ने कहा—हाँ प्रभु ! जिस प्रकार आपने फर्माया है, वह सोलह आना सत्य है। मै इन्ही विचारों मे तल्लीन होकर आपकी सेवा मे अपने असमजस को मिटाने के लिये उपस्थित हुई हूँ। अब, कृपया, इसका स्पष्टीकरण करने का अनुग्रह करे। भगवान् ने फर्माया, हे देवानुप्रिये ! इसका विवरण यूँ है, तू ध्यान देकर सुन।

उस काल, भद्दिलपुर नगर में, नाग नामक एक महान् सम्पत्तिशाली गाथापति रहता था। उसके 'सुलसा' नामक एक पत्नी थी। उस सुलसा नामक गाथापत्नी को बाल्यावस्था मे ही, किसी ज्योतिपी ने कहा था, कि—तू मृत-वन्ध्या होगी। तब से वह सुलसा बाल्यकाल से ही हरिणगमेसी देव की भक्ति करने लगी थी। हरिणगमेसी देव की प्रतिमा बना कर, वह नित्य-प्रति स्नानादि से निवृत्त हो भीगी साड़ी से ही, उस प्रतिमा के सम्मुख पुष्पो का ढेर करती थी। और फिर वह अपने घुटनों को पृथ्वी पर टेक कर उसे वन्दना करती। तत्पश्चात् भोजन कर वह अपने अन्य गृह-कार्यो मे संलग्न होती थी।

मूलः—तए णं तीसे सुलसाए गाहावइणीए भत्तिबहुमाण सुस्सूसाए हरिणेगमेसी देवे

आराहिए यावि होत्था । तए णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणट्ठयाए सुलसं गाहावइणिं तुमं च णं दो वि समउउयाओ करेइ, तए णं तुब्भे दो वि सममेव गब्भे गिण्हह, सममेव गब्भे परिवहह, सममेव दारए पयायह । तए णं सा सुलसा गाहावइणी विणिहायमावण्णे दारए पयाइति, तए णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए अणुकंपणट्ठाए विणिहायमावण्णए दारए करतलसंपुडेणं गेण्हइ २ त्ता तव अंतियं साहरइ २त्ता तं समयं च णं तुमं पि णवण्हं मासाणं सुकुमालदारए पसवसि, जे वि य णं देवाणुप्पिए ! तव पुत्ता ते वि य तव अंतियाओ करयलसंपुडेणं गेण्हइ २ त्ता सुलसाए गाहावइणीए अंतिए साहरइ तं तव चेव णं देवइ ! एए पुत्ता णो चेव सुलसाए गाहावइणीए ।

भावार्थ.—तत्पश्चात्, भक्ति और बहुमान-पूर्वक सेवा सुश्रूषा करने पर, हरिणगमेसी देव, उस सुलसा गाथा-पत्नी की सेवाओ के वशीभूत हो गया । तब उस हरिणगमेसी देव ने सुलसा गाथापत्नी पर अनुकम्पा दिखला कर, उसे तथा तुझे दोनों को एक ही समय मे ऋतुमती की । तुम दोनों ही एक साथ गर्भवती हुई । तुम दोनों के गर्भो की प्रतिपालना भी साथ ही साथ हुई । इतना ही नही पुत्रोत्पत्ति भी दोनों के यहाँ साथ ही साथ हुई।

परन्तु सुलसा ने मृतक पुत्र को जन्म दिया। उस मृतक पुत्र को हरिणगमेसी देव ने अपने हाथो में लेकर तेरे पास रख दिया। और, उसी समय, तू ने भी, नौ मास और दस दिन पूर्ण होने पर एक सुकुमार पुत्र को जन्म दिया। उस पुत्र को तेरे पास से उठा कर सुलसा के अधीन कर दिया। इसलिए हे देवकी! ये पुत्र सचमुच में तेरे ही है, सुलसा के नहीं।

मूल:—तए णं सा देवई देवी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ तुट्ठ जाव हियया अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ वंदइत्ता नमंसइत्ता जेणेव ते छ अणगारा तणेव उवागच्छइ २ त्ता ते छप्पि अणगारा वंदइ णमंसइ वंदइत्ता णमंसइत्ता आगयपण्हुया पप्फुयलोयणा कंचुयपडिक्खित्तया दरियवलयबाहा धाराहयकलंबपुप्फगं पिव समूससियरोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी २ सुचिरं णिरिक्खइ २ त्ता वंदइ नमंसइ वंदइत्ता नमंसइत्ता जेणेव अरिहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता तमेव धम्मियं दुरूहइ २ त्ता जेणेव बारवइ णयरी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता बारवइं

नयरिं अणुपविसइ २ त्ता जेणेव सए गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ २ त्ता जेणेव सए वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सयंसि सयणिज्जंसि निसीयइ।

भावार्थ—तदनन्तर महारानी देवकी, श्री अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान् के मुखारविन्द से इस वृत्तान्त को सुन कर बडी ही प्रसन्न हुई। और इस बात को हृदय में धारण कर, आनन्द का अनुभव करती हुई, भगवान् को वन्दना की। पश्चात् जहाँ वे छहो अणगार विराजमान् थे, वहाँ उनकी सेवा में वह उपस्थित हुई। वहाँ जा कर, उन्हे वन्दना की। उनको देखते ही महारानी देवकी के स्तनो से दुग्ध की धारा बह चली। आनन्द के मारे, उसकी आंखे आँसुओ से ओत-प्रोत हो गई। हर्ष से उसकी कंचुकी की कसे टूट पड़ी। उसकी भुजाओं के भूषण तथा हाथकी चूडियाँ तंग होने लग गई। जिस प्रकार वर्षा में कदम्ब के पुष्प विकसित हो उठते है, उसी प्रकार अपने अङ्गज छहों सुकुमार और परम सुन्दर अणगारों को अवलोकन कर महारानी देवकी का रोम-रोम पुलकित हो उठा। इस प्रकार देवकी उन छहों अणगारो को प्रेम पूर्वक बहुत देर तक अनिमेष-दृष्टि से निरखती रही। तत्पश्चात्, उन्हे वन्दना कर फिर भगवान् के समीप वह आई। उन्हें भी विधि-पूर्वक वन्दना कर, अपने धार्मिक-रथ पर सवार हुई। रथ द्वारिका नगरी में प्रविष्ट हुआ। राजप्रासाद की तरफ, बाहर की उपस्थान-शाला में

पहुँचा । देवकी महारानी रथ से नीचे उतर पडी और अपने निवास-स्थान मे पहुँच कर शैया पर बैठी ।

मूल:—तए णं तीसे देवतीए देवीए अयं अब्भत्थिए समुप्पण्णे-एवं खलु अहं सरिसए जाव नलकुब्बरसमाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणए समणुभूए, एस वि य णं कण्हे वासुदेवे छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छइ, तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जासिं मण्णे णियगकुच्छिसंभूतयाइं थणदुद्धलुद्धयाइं महुरसमुल्लावयाइं मंमणपजंपियाइं थणमूलकक्खदेसभागं अभिसरमाणा तिं मुद्धयाइं पुणो य कोमल कमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊण उच्छंगणिवेसियाइं देंति समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्पभणिए; अहं णं अधन्ना अपुन्ना अकयपुन्ना एत्तो एकतरमपि न पत्ता ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ ।

भावार्थः—तत्पश्चात्, उस देवकी महारानी के मन मे इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ, कि—मैंने नलकुवेर के समान सुन्दर एक सरीखे सात पुत्रो को जन्म दिया है । परन्तु उनमे से मैने एक का भी बालकपन का सुखानुभव नही किया । और, यह कृष्ण वासुदेव भी मेरे पास प्रणाम करने के लिए छ: छः महीने में आते हैं ।

पहले तो उन माताओं का जीवन ही सार्थक है, जिनकी कोख से पुत्र-रत्न प्रसव होते हैं। फिर वे माताएँ और भी अधिक धन्यवाद की पात्र हैं, जो अपने स्तन के दुग्ध में मुग्ध होने वाले, मधुर-भाषी और तुतलाती हुई बोली को बोलने वाले लालों को, अपनी कोमल गोदी में खिलाती रहती है। वे माताएँ सचमुच में बड़ी ही भाग्यवती है, जो अपने स्तन के मूल से कुक्षि-भाग मे, तथा कुक्षि-भाग से बाहुओं में क्रीड़ा करने वाले, अपने दुध-मुहे आँखो के तारों की, बाल-क्रीड़ा के सुख का अनुभव करती है। और, वे माताएँ सचमुच में साक्षात् देवियाँ है, जिन्हे अपने नन्हे-नन्हे लालों को, अपने कोमल करो से उठा कर अपनी गोदी मे बिठाने, आलिङ्गन करने, और उनके मुख-चन्द्र को बार—बार देखने का सु—अवसर प्राप्त होता है। ऐसा मै मानती हूँ। किन्तु मै अधन्या हूँ भाग्य-हीना हूं। मैने पूर्व-भव मे ऐसे पुण्य उपार्जन नही किये कि जिससे एक भी बालक का इस प्रकार आनन्द अनुभव मै कर सकूं।" महारानी देवकी, इस प्रकार के विचारों में तल्लीन होकर मन-मलीन तन-छीन हो गई और आर्त्त ध्यान ध्याती हुई चिन्ता-सागर में डुबकियाँ लगाने लगी।

मूलः—इमं च णं कण्हे वासुदेवे ण्हाए जाव विभूसिए देवतीए देवीए पाय वंदए हव्व-मागच्छइ। तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं पासइ २ त्ता देवतीए देवीए पायग्गहणं करेइ २ त्ता देवतीं देवी एवं वयासी-अन्नया णं अम्मो ? तुब्भे ममं पासेत्ता हट्ठ जाव भवह। किण्णं

अम्मो ! अज्ज तुब्भे ओहय जाव झियायह । तए णं सा देवई देवी कण्हं वासुदेवं एवं वया-सी-एवं खलु अहं पुत्ता ! सरिसए जाव समाणे सत्तपुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणे अणुब्भूए, तुमं पि य णं पुत्ता ! ममं छण्हं छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छसि, तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव झियामि ।

भावार्थ.–इतने ही में श्री कृष्ण वासुदेव स्नानादि से निवृत्त हो, और वस्त्र तथा अलङ्कारों से अलंकृत बन, अपनी माता, महारानी देवकी के समीप प्रणाम करने के लिए शीघ्र ही उपस्थित हुए । परन्तु अपनी माता को उन्होने चिन्तित देखा । प्रणाम करके वे उससे बोले-माता ! और दिन जब मै आता हूँ, तब तो आप मुझे देखकर बडी प्रसन्न हो उठती है । परन्तु आज तो अति ही अप्रसन्न और चिन्तित जान पड रही है । इसका कारण क्या है ? इस पर महारानी देवकी ने कहा–पुत्र ! मैने एक सरीखे नल-कुबेर के समान सात पुत्रो को जन्म दिया है, परन्तु उन सात पुत्रो मे से किसी एक पुत्र की भी बाल क्रीड़ा के सुख का अनुभव नही किया । तुम भी छ छ. महीने मे, जब प्रणाम करने आते हो तो अपना मुँह दिखा जाते हो । अत वे माताएँ सचमुच मे बडी भाग्यवती है, जो अपने हृदय-दुलारे वालको की बाल-क्रीडा का आनन्द अनुभव करती है । मै तो इस आनन्द के अनुभव से बिलकुल ही वञ्चित हूँ । मेरे प्यारे लाल ! बस, मै इसी कारण चिन्तित रहती हूँ ।

मूलः—तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं एवं वयासी—मा णं तुब्भे अम्मो ! ओहय जाव झियायह, अहण्णं तहा वत्तिस्सामि जहा णं ममं सहोदरे कणीयसे भाउए भविस्सती त्ति कट्टु देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव वग्गूहिं समासासेइ २त्ता तओ पडिनिक्खमइ २ त्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जहा अभओ नवरं हरिणेगमिसस्स अट्ठमभत्तं पगेण्हइ जाव अंजलि कट्टु एवं वयासी—इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सहोदरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं।

भावार्थः—तत्पश्चात् श्री कृष्ण वासुदेव ने माता देवकी से कहा—हे माता ! अब आप चिन्ता चित्त से निकाल कर दूर कीजिए। मै ऐसा साधन करूँगा, जिससे मेरे एक सहोदर भ्राता उत्पन्न होगा। इस प्रकार माता को इच्छित मधुर वचनो से विश्वास और धीरज बँधाते हुए वहाँ से चले। और जिस ओर पौषधशाला थी, वहां आकर, जिस प्रकार श्रीअभयकुमार ने देवाराधना की थी, उसी प्रकार देवाराधना में तत्पर हो गये। विशेषता केवल इतनी ही थी कि-उन्होने तेले की तपश्चर्या करके हरिणगमेसी देव से अपने उभय कर-बद्ध प्रार्थना की, कि—हे देवानुप्रिय ! मेरी यह इच्छा है, कि मेरे एक सहोदर लघु भ्राता का जन्म हो। अतएव मेरी इस इच्छा की पूर्ति आप करें।

मूलः—तए णं से हरिणेगमेसी देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—होहिति णं देवाणुप्पिया

तव देवलोयचुए सहोदरे कणीयसे भाउए, से णं उम्मुक्कबालभावे जाव जोवणगमणुपत्ते अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियं मुंडे जाव पव्वइस्सइ, कण्हं वासुदेवं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वदइ २ त्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

भावार्थ—इस पर, हरिणगमेसी देव ने श्री कृष्ण वासुदेव को कहा, कि—हे देवानुप्रिय! देवलोक से एक देव आयुष्य-पूर्ण कर तुम्हारे सहोदर लघु भाई अवश्य होगा, पर वह बाल्य अवस्था से मुक्त होकर प्रारम्भिक यौवन वय मे श्री अर्हन्त अरिष्टनेमि प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण करेगा। इस प्रकार वह देव श्री कृष्ण को दो-तीन बार कह कर जिस ओर से आया था, उसी ओर वापिस चला गया।

मूल:—तए णं से कण्हे वासुदेवे पोसहसालाओ पडिनिक्खमइ २ त्ता जेणेव देवई देवी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता देवतिए देवीए पायग्गहणं करेइ २ त्ता एवं वयासी—होहिइ णं अम्मो! ममं सहोदरे कणीयसे भाउ त्ति कट्टु देवतीए देवीए इट्ठाहिं जाव आसासेइ २ त्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए। तए णं सा देवई देवी अन्नया कयाइं तंसि तारिसंगसि जाव सीहं सुमिणे पासेत्ता पडिबुद्धा जाव हट्ठ तुट्ठ हियया तं गब्भं सुहं सुहेणं परिवहइ।

भावार्थ.—कृष्ण वासुदेव पौषधशाला से चलकर फिर अपनी माता देवकी के निवासस्थान में आये। माता को उन्होने सविनय प्रणाम किया। तब उनके पॉव पकडकर बोले—"माताजी, मेरे एक सहोदर लघु भ्राता अवश्य होगा। इस प्रकार के मधुर वचनो से माताजी को आश्वासन देकर श्री कृष्णजी वापिस अपने भवन की ओर लौट आये। महारानी देवकी ने एक दिन पिछली रात्रि मे शैया पर सोते हुए, अर्द्ध निद्रितावस्था मे, एक स्वप्न देखा कि-एक सिह आकाश मार्ग से नीचे की ओर उतरता हुआ, उनके मुँह में प्रवेश कर गया है। सजग होकर, इस स्वप्न को देखने के कारण महारानी का चित्त बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उन ने पतिदेव से इस स्वप्न का फल पूछा। जान पड़ा कि वह अति ही शुभ स्वप्न था। फिर स्वप्न-फल के विशेषज्ञों से भी उसका निर्णय उन ने प्राप्त किया। तब तो बडी ही प्रसन्न हुई। फिर उस गर्भ का सुख तथा प्रयत्न पूर्वक प्रतिपालन वह करने लगी।

मूलः—तए णं सा देवई देवी नवण्हं मासाणं जासुमणा रत्तबंधुजीव,तलक्खर,ससरसपा-रिजातकतरुणदिवाकरसमप्पभं सव्वनयणकंतं सुकुमालं जाव सुरूवं गयतालुयसमाणं दारयं पयाया, जम्मणं जहा मेह कुमारे जाव जम्हा णं अम्हं इमे दारए गयतालुसमाणे तं होउ णं अम्ह एयस्स दारस्स नामधेज्जे गयसुकुमाले गयसुकमाले। तए णं तस्स दारगस्स अम्मा-

पियरे नामं करेइ गयसुकुमाले त्ति सेसं जहा मेहे जाव अलंभोगसमत्थे जाए यावि होत्था। तत्थ णं वारवईए नयरीए सोमिले नामं माहणे परिवसइ अड्ढे रिउव्वेय जाव सुपरिनिट्ठिए यावि होत्था। तस्स सोमिलमाहणस्स सोमसिरी नामं माहणी होत्था सुकुमाला। तस्स णं सोमिलस्स माहणस्स धूया सोमसिरीए माहणीए अत्तया सोमा नामं दारिया होत्था सुकुमाला जाव सुरूवा रूवेणं जाव लावण्णेणं उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरायावि होत्था।

भावार्थ.–तदनन्तर, उस महारानी देवकी ने, गर्भ का समय पूर्ण होने पर जूही, विकसित पारिजात के पुष्प, बन्धुजीव (बधूटी), उदय होते हुए सूर्य की प्रभा और गज के तालुवे के समान आरक्त दर्शकों के नेत्रों को मोहित करने वाले बडे ही कोमल और सुन्दर रूप वाले पुत्र-रत्न को जन्म दिया। इनका जन्मोत्सव मेघ कुमार के सदृश किया गया। अशुचि से निवृत्त होकर बारहवे दिन नामकरण-संस्कार उनका मनाया गया। इनका कोमलपन, हाथी के तालुवे के समान होने के कारण, इनका नाम भी 'गजसुकुमार' रक्खा गया। इनकी बाल्यावस्था का अवशेष वर्णन मेघकुमार की भाँति ही समझना चाहिए। ये 'गज-सुकुमार' नामक कुमार पढ लिख कर शिक्षित हुए। अब बाल्यावस्था से मुक्त होकर प्रारम्भिक यौवन की घाटी मे ये उतरे। उधर द्वारिका नगरी मे 'सोमिल' नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह सम्पत्तिशाली और ऋग्वेद आदि चारों वेदों का पूर्ण

ज्ञाता था । उसके सोम श्री नाम की सुकुमार धर्मपत्नी थी । उस सोमिल ब्राह्मण के 'सोमा' नाम की एक अति ही सुन्दर और रूप लावण्यवती एक बालिका थी ।

मूलः—तए णं सा सोमा दारिया अण्णया कयाइ ण्हाया जाव विभूसिया बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ २ त्ता जेणेव रायमग्गे तणेव उवागच्छइ २ त्ता रायमग्गंसि कणगतिंदूसएणं कीलमाणी २ चिट्ठति । ते णं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे परिसा निग्गया, तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए जाव विभूसिए गयसुकुमालेणं कुमारेणं सद्धिं हत्थिखंधवरगए सकोरंट मल्लदामेणं छत्तेणं धरेज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं बारवईए नयरीए मज्झं मज्झेणं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स पायवंदए णिग्गच्छमाणे सोमं दारियं पासइ २ त्ता सोमाए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य जाव विम्हिए ।

भावार्थ—वह लड़की एक रोज स्नान मञ्जन कर यावत् वस्त्रालङ्कारों से सुसज्जित हो, और अनेक दास-दासियों को साथ ले अपने घर से निकली । चलती-चलती वह जिधर राजमार्ग था उधर आ निकली । और,

राजमार्ग में अपनी स्वर्ण तारों से जड़ित गेंद को वह उछालने लगी। उस समय, अरहन्त अरिष्टनेमि भगवान् वहाँ पधारे। शहर मे यह खबर होते ही दर्शनों के लिए जनता उमड़ पड़ी। कृष्ण महाराज ने भी भगवान् के पदार्पण के सुसमाचार सुने। तब तो स्नान मञ्जनादि से शीघ्र ही निवृत्त हो, और वस्त्राभूपणो से सुसज्जित बन, अपने लघु भ्राता गजसुकुमार को साथ उन्हो ने लिया। फिर गजारूढ़ हो, कोरट (कनेर) नामक वृक्ष के फूलों के हारों से वेष्टित छत्र को धारण किये हुए द्वारिका नगरी के मध्य के सार्वजनिक मार्गो से भगवान् अरिष्टनेमि के चरण-वन्दन को प्रस्थान उन्हों ने किया। उस समय उन दोनों भइयों की शोभा बडी ही अभिराम थी। बीच-बीच मे श्वेत चॉवर, जो उन पर, डुलाये जा रहे थे, वे तो उनकी उस शोभा को और भी बढाये देते थे। मार्ग में गेंद खेलती हुई वह 'सोमा' नामक कन्या उन्हे दिख पड़ी। वे उस ब्राह्मण की कन्या का अनुपम रूप-लावण्य देखकर विस्मित हुए।

मूलः—तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सोमिलं माहणं जायित्ता सोमं दारियं गेण्हह, गेण्हित्ता कन्न तेउरंसि पक्खिवह, तए णं एसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स भारिया भविस्सइ। तए णं कोडुंवियपुरिसा जाव पक्खिवंति तए णं कोडुंवियपुरिसा जाव पच्चपिणंति तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवतीए

नयरीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ २ त्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जाव पज्जुवासइ । तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स गयसुकमालस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहाए कण्हे पडिगए ।

भावार्थ.—तत्पश्चात् श्री कृष्ण वासुदेव ने अपने सेवको को बुलवाकर कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और सोमिल ब्राह्मण से इस कुमारी को मॉगकर, इसे कन्याओं के अन्त.पुर में रख दो । क्यों कि इस कन्या के साथ कुमार 'गजसुकुमार' का विवाह किया जायेगा । वे सेवक श्री कृष्ण की आज्ञा पाते ही सोमिल ब्राह्मण के घर पहुँचे । और सोमिल से कहा-त्रिखण्ड के स्वामी, श्री कृष्ण ने अपने लघु भ्राता गजसुकुमार का विवाह तुम्हारी कन्या 'सोमा' के साथ करना निश्चय किया है । और, इसीलिए उन्हों ने तुम्हारी कन्या को मॉगा है । सोमिल यह बात सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला—अहो मेरी कन्या और राजकुमार गजसुकुमार के साथ उसका विवाह ? यह तो बडे ही सौभाग्य की बात है । लीजिए, इस लडकी को लेजाइए[1] । लड़की ले जाकर अन्तःपुर मे रख दिया गया । उधर श्री कृष्ण वासुदेव की सवारी 'सहस्राम्रवन' नामक उद्यान में भगवान्

[1] उस समय तीनो वर्णों मे परस्पर कन्याओ का आदान-प्रदान हुआ करता था । परन्तु आगे चल कर, यह प्रथा महाराज विक्रमादित्य के समय मे बन्द हो गई ।

के निकट पहुँची। वहाँ श्री कृष्ण आदि ने भगवान् को श्रद्धा तथा भक्ति के साथ वन्दना की। भगवान् ने श्री कृष्ण वासुदेव और गजसुकुमार को धर्मोपदेश दिया। फिर कृष्ण महाराज भगवान् का उपदेश श्रवण कर द्वारिका की ओर लौट आये।

मूल:—तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियं धम्मं सोच्चा जं नवरं अम्मापियरं आपुच्छामि जहा मेहो णवरं महलियावज्जं जाव वड्ढि कुले। तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव गयसुकुमाले कुमारे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता गयसुकुमालं कुमारं आलिंगइ २ त्ता उच्छंगे निवेसेइ २ त्ता एवं वयासी-तुमं ममं सहोदरे कणीयसे भाया तं मा णं देवाणुप्पिया! इयाणिं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे जाव पव्वयाहि। अहण्णे वारवतीए नयरीए महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचिस्सामि। तए णं से गयसुकुमाले कुमारे कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठति।

भावार्थ—गजसुकुमार को श्री अरन्हत अरिष्टनेमि प्रभु की वाणी सुन कर, वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्हो ने श्री मेघकुमार की तरह भगवान् से कहा—भगवन्! मैं माता-पिता से पूछकर, अर्थात् उनकी आज्ञा प्राप्त

कर आपके पास दीक्षा धारण करूँगा । इतना कहकर वे अपने घर आये । उन्होंने माता-पिता से दीक्षा धारण करने की आज्ञा माँगी । माता-पिता ने कुमार को अनेक प्रकार के सांसारिक प्रलोभन दिये । दीक्षा न लेने की अनेको बाते कही । अन्त मे कुमार से उन्होंने कहा—तुम्हारा विवाह हो जाने पर, तुम चाहो तो अपनी सन्तति को अपना कार्यभार सौप कर, दीक्षित हो जाना । श्री कृष्ण ने भी इस संवाद को सुना । वे शीघ्र ही कुमार गजसुकुमार के पास आये । उन्हे कण्ठ से लगा लिया । अपनी गोद मे उन्हे बिठाया । तब प्रेम-पूर्वक उनसे वे यूँ बोले—गजसुकुमार ! तुम मेरे लघु भ्राता हो । हे देवानुप्रिय ! तुम मेरा कहा मानो । अभी भगवान् के पास दीक्षा मत लो । मै आज ही इस द्वारिका नगरी में, बड़े ही समारोह के साथ, तुम्हारा राज्याभिषेक कर दूँगा । कदाचित्, पाठक समझते होंगे, कि राज्याभिषेक की बात को सुन कर, गजसुकुमार कुमार का मन अपने निश्चय से विचलित हो गया होगा । सो नही । कुमार ने इसमें दूसरा ही कुछ अर्थ लिया । उन्होने समझा, अभी तो दीक्षा-धारण की केवल चर्चा ही हो रही है। इतने पर ही जब त्रि-खण्ड का एक-छत्र अधिष्ठता मै बनाया जा रहा हूँ, तब दीक्षा-धारण करने पर तो इसका अनुपात कितना बढ जावेगा, अभी किसी भी प्रकार आँका नही जा सकता । यह सोच-समझ कर, वे अपने सत्य-पथ पर, हिमालय के समान अटल और समुद्र के समान गम्भीर बने रहे । और, उन्होंने श्री कृष्ण के कथन के उत्तर में केवल मौनावलम्बन धारण कर लिया ।

मूलः—तए णं से गयसुकुमाले कुमारे कण्हं वासुदेवं अम्मापियरो य दोच्चं पि तच्चं पि एवं

वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! माणुस्सया कामा खेलासवा जाव विप्पजहियव्वा भविस्संति, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाये समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए जाव पव्वत्तए । तए णं तं गयसुकुमालं कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य जाहे नो संचाएंति बहुयाहिं अणुलोमाहिं जाव आघवित्तए ताहे अकामाइं चेव एवं वयासी-तं इच्छामो णं ते जाया ! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए, निक्खमणं जहा महाबलस्स जाव तमाणाए तहा जाव संजमित्तए, से गयसुकुमाले अणगारे जाए इरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी ।

भावार्थ.—जब माता-पिता ने तथा श्री कृष्णजी ने गजसुकुमार को दो तीन बार राज्याभिषेक की बात कही, तब गजसुकुमार बोले—माताजी पिताजी, एव देवानुप्रिय ज्येष्ठ बन्धुवर ! मानव-जीवन सम्बन्धी काम-भोग, गिरते हुए श्लेष्म के समान, अथवा किम्पाक फल के समान है, किम्पाक फल रङ्ग-रूप और स्वाद मे जितना ही अच्छा होता है, उतना ही विष से परिपूर्ण भी वह होता है, अत: विषयसुख हलाहल विप के तुल्य त्याज्य है । मेरी तो यही हार्दिक इच्छा है कि आप की आज्ञा होने पर मैं दीक्षा ग्रहण कर लूँ । इस प्रकार के सुदृढ़ निश्चय को देखकर, माता-पिता गजसुकुमार के भावो मे रच-मात्र भी परिवर्तन न कर सके । माता-पिता बन्धु-बान्धवो द्वारा

संयम की कठिनता और संसार के सुखों का दिग्दर्शन बार-बार करा देने पर भी, उनके भाव ज्यों के त्यों स्थिर रहे। वे एक इच-भर भी इधर-उधर न हुए। तब माता-पिता ने कहा—पुत्र ! और नही तो राज्य घराने में जन्म होने के नाते ही केवल एक दिन ही तू राज्य कर ले। बस, हमारी केवल इतनी सी बात को तू अवश्य मान ले। गजसुकुमार मौन रहे। तदनन्तर माता-पिता ने बड़े समारोह-पूर्वक गजसुकुमार का राज्याभिषेक कर पुत्र से पूछा—क्या आज्ञा है ? पुत्र ने कहा-मुझे दीक्षा दिलाओ। बस, फिर क्या था, माता-पिता ने बड़े समारोह से कुमार गजसुकुमार को श्री अरहंत अरिष्टनेमि भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण करवा दी। अब गजसुकुमार अणगार वन गये। पाँच समिति तीन गुप्ति और नौ बाड़सहित ब्रह्मचर्य-व्रतधारी बन गये। 'जयं चरे जयं चिठ्ठे' आदि प्रभु के उपदेशानुसार, अपनी प्रवृत्ति को उन्होने कर लिया। और, इस नाते वे अब त्रिखण्ड के राज्य के बदले, आत्म-साम्राज्य के अधिकारी बन गये।

मूलः—तए णं से गयसुकुमाले अणगारे जं चेव दिवसं पव्वतिए तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ २ त्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महाकालंसि सुसाणंसि एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेत्तए। अहा-

सुहं देवाणुप्पिया ! तए णं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुन्नाए समाणे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियाओ सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ २ त्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागए उवागइत्ता थंडिल्लं पडिलेहेइ २ त्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ २ त्ता ईसिं पब्भारगएणं काएणं जाव दो वि पाए साहट्टु एगराइं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

भावार्थः—तत्पश्चात्, गजसुकुमार अणगार ने, जिस दिन दीक्षा ग्रहण की उसी दिन मध्याह्न में, जहाँ अरिष्टनेमि भगवान् विराजमान थे, वहाँ आकर उन्हे वन्दना की और विनम्रता-पूर्वक निवेदन किया, कि भगवन् ! आप की आज्ञा होने पर, मेरी ऐसी इच्छा है, कि मै इस द्वारिका नगरी के सबसे बडे 'महाकाल' नामक स्मशान में एक रात्रि की महाप्रतिज्ञा धारण कर विचरूँ। अर्थात् एक सम्पूर्ण रात्रि-भर वहाँ ध्यानस्थ होकर खडा रहूँ। भगवान् ने फर्माया—'हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हे सुख हो, उस प्रकार करो।' इस प्रकार भगवान् की आज्ञा पाते ही, उन्होने भगवान् को वन्दना की। और सहस्राम्रवन उद्यान से निकल कर 'महाकाल' नामक श्मशान में आये। वहाँ आकर ध्यान धारण करने के स्थान को उन्होने देखा। उन्होने छान-बीन की, कि वह

स्थान, कही चोटी, कीडे, मकोड़े, आदि जोव-जन्तुओ की विराधना होने का स्थान तो नही है। फिर बड़ी नीत, लघुनीत (टट्टी, पेशाब) के स्थान को उन्होने देखा। तत्पश्चात्, खड़े हो मस्तक को कुछ झुका कर, दोनों हाथ घुटने की तरफ लम्बे किये। और नेत्रों को अनिमेष रखते हुए, एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर की। तब दोनो पैर पास-पास रख कर वे अविचल ध्यान में निमग्न हो गये।

मूलः—इमं च णं सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाए वारवतीओ नयरीओ बहिया पुव्वणिग्गए समिहाओ य दब्भे य कुसे य पत्तामोडं च गेण्हइ २ त्ता ततो पडिनियत्तइ २ त्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामंतेण वीईवयमाणे २ संज्भाकालसमयंसि पविरल-मणुस्सांसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ २ त्ता तं वेरं सरइ २ त्ता आसुरुत्ते एवं वयासी—एस णं भो, से गयसुकुमाले कुमारे अपत्थिय जाव परिवज्जिए जे णं मम धूयं सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अदिट्ठदोसपइयं कालवत्तिणिं विप्पजहेत्ता मुंडे जाव पव्वतिए।

भावार्थ—इसी समय, वह सोमिल ब्राह्मण, उसी महाकाल स्मशान के पास होकर निकला! वह गज-सुकुमार के दीक्षा लेने के पहले ही, द्वारिका नगरी के बाहर, दर्भ, कुश, पत्ते, मौर आदि सामग्री, यज्ञ के लिए

लेने को गया हुआ था। लौटते समय वह वहाँ आ निकला। उस सध्या काल के समय मे मनुष्यो का आवागमन उधर कुछ कम हो गया था। गजसुकुमार मुनि को देखकर, सोमिल को पूर्वकृत वैर-भाव स्मरण हो आया। वह क्रोधित हो कर, कटु सम्बोधन के शब्दो मे बोला—अरे, यह गजसुकुमार कुमार तो मृत्यु को चाहने वाला और लज्जा रहित है। मेरी पत्नी सोम-श्री की अङ्गजा, सोमा नामक मेरी प्राणप्यारी पुत्री को, जो त्याज्यादि दोषो से रहित तथा अबहिष्कृत यौवनावस्था मे है, अकारण ही उसे छोड कर यह साधु बन गया है।

मूलः—तं सेयं खलु मम गयसुकुमालस्स कुमारस्स वेरनिज्जायणं करेत्तए एवं संपेहेइ २ त्ता दिसापडिलेहणं करेइ २ त्ता सरसं मट्टियं गेण्हइ २ त्ता जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता गजसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ २ त्ता जलंतीओ चिययाओ फुल्लियकिंसुयसमाणे खयरंगारे कहल्लेणं गेण्हइ २ त्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ २ त्ता भीए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ २ त्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

भावार्थः—अत एव, आज मै 'गजसुकुमार' कुमार को अपने वैर का बदला पाई-पाई चुका देना ही श्रेष्ठ सम-

झता हूँ।" ऐसा विचार कर इधर-उधर उसने देखा और जलाशय के स्थान से गीली मिट्टी लाकर गजसुकुमार की ओर आया। उनके सिर पर उस गीली मिट्टी की एक पाल उसने बाँधी। तब जलती हुई चिता मे से, जाज्वल्यमान, टेसू के पुष्प के समान लाल सुर्ख, खैर की लकडी के धधकते हुए अंगारों को, मिट्टी के एक फूटे बर्तन मे भर कर गजसुकुमार के माथे पर उसने उँडेल दिया। तत्पश्चात् वह सोमिल, भयभीत हो कर वहाँ से, शीघ्र ही जिधर से आया था, उधर ही को चला गया।

मूल:—तए णं से गजसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दुरहिसाया। तए णं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं जाव अहियासेइ। तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं जाव अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थज्झवसाणेणं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुपविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे तओ पच्छा सिद्धे जावप्पहीणे। तत्थ णं अहा संनिहितेहिं देवेहिं सम्मं आराहितं ति कट्टु दिव्वे सुरभिगंधोदए वुट्ठे दसद्धवन्ने कुसुमे निवाडिए, चेलुक्खेवे कए दिव्वे य

गीयगंधव्वनिनाए कए यावि होत्था ।

भावार्थ—तत्पश्चात्, उन गजसुकुमार अणगार के शरीर मे महा भयङ्कर एव असह्य वेदना हुई । पर उन्होने सोमिल ब्राह्मण के विषय मे अपने हृदय मे जरा भी बुरे भाव न लाते हुए, उस वेदना को, हॅसते-हॅसते समभावो से सहन कर लिया । तब शुभ परिणाम एव प्रशस्त अध्यवसायो से ज्ञान को रोकने वाले कर्मो का क्षय हुआ । कर्मो के क्षय हो जाने, तथा अपूर्व करण में प्रवेश होने पर अनन्त पदार्थ, जिससे जाने जायॅ, ऐसा प्रधान केवल ज्ञान, केवल दर्शन उन्हे उत्पन्न हुआ । और वे गजसुकुमार अणगार कुछ ही समय के पश्चात् सिद्धत्व को प्राप्त हो गये । उन्होने अपने सम्पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक दु:खो का सदा के लिए अन्त कर डाला और मोक्ष मे जा विराजे । मोक्ष प्राप्त होने पर समीपस्थ देवो द्वारा, दिव्य सुगन्धित जल की वृष्टि, पॉच वर्ण के फूल, तथा सुन्दर दिव्य वस्त्रो की वर्षा, आकाश से उन के शव पर हुई । देवगण प्रधान गीत एव गन्धर्व-निनाद, अर्थात् मृदङ्गों के शब्दो का घोर नाद करने लगे ।

मूलः—तए णं से कण्हे वासुदेवे कल्लं पाउप्पभायाए जाव जलंते ण्हाए जाव विभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरेज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुप्पमाणीहिं महया भडचडगरपहकरवंदपरिक्खित्ते वारवइं णयरिं मज्झं मज्झेणं जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी

तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए णयरीए मज्भंमज्भेणं णिगच्छ-माणे एक्कं पुरिसं पासइ जुण्णं जराजज्जरियदेहं जाव किलंतं महइमहालयाओ इट्टगरासी-ओ एगमेगं इट्टगं गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतो गिहं अणुप्पविसमाणं पासइ २ त्ता तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणुकंपणट्ठाए हत्थिखंधवरगए चेव एगं इट्टगं गेण्हइ २ त्ता बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पवेसइ । तएणं कण्हेणं वासुदेवेणं एगाए इट्टगाए गहि-याए समाणीए अणेगेहिं पुरिससएहिं से महालए इट्टगस्सरासी बहिया रत्थापहाओ अंतो-घरंसि अणुप्पवेसिए ।

भावार्थः—दूसरे दिन, प्रभात मे सूर्योदय होने पर, श्री कृष्ण वासुदेव ने स्नानादि कर वस्त्रालङ्कार पहने । और फिर हाथी पर सवार हुए । उनके ऊपर उस समय, कोरंट नामक वृक्ष के पुष्पो से वेष्टित छत्र सुशोभित था । दाहिनी और बाईं ओर श्वेत चँवर ढुलाये जा रहे थे । वे अनेक सुभटो सहित द्वारिका नगरी के मध्य मे सार्वजनिक मार्गो से होते हुए, जिस ओर श्री अरहंत अरिष्टनेमि भगवान् विराज रहे थे, उधर प्रस्थान कर रहे थे ।

मार्ग में, प्रस्थान करते हुए, श्री कृष्ण ने एक अति ही वृद्ध, जराजीर्ण तथा जर्जरित तन वाले मनुष्य को

देखा जो उस समय एक बहुत भारी ईटों के ढेर में से, एक-एक ईंट उठाकर, बड़ा कष्ट पाता हुआ बाहर से घर के भीतर रख रहा था। यह दृश्य देखकर श्री कृष्ण के मन मे विचार उत्पन्न हुआ, कि यह बेचारा वृद्ध, इस प्रकार कष्ट पाते हुए इस विशाल ईंट के ढेर को एक-एक ईट करके, कब तक घर मे रख पायेगा। ऐसा विचार उत्पन्न होते ही उन्हे उस वृद्ध पुरुष पर दया आई और हाथी पर बैठे-बैठे ही उन्होने उस विशाल ईटों के ढेर में से एक ईट उठाकर उसी मकान के पिछले हिस्से मे जहाँ वाडा था, रख दी। अपने स्वामी श्री कृष्ण को इस प्रकार करते हुए देख कर, उनके साथ के जो सैकडो मनुष्य थे, उन्होने भी उनका अनुकरण किया। सभी ने एक-एक ईंट उस ढेर मे से उठाकर उस बाडे मे रख दी। इस प्रकार, श्री कृष्ण के एक ईट उठाने पर, उस बेचारे वृद्ध मनुष्य के बार-बार चक्कर काटने का सारा कष्ट बात की बात मे दूर हो गया।

मूलः—तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिगच्छइ २ त्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागए उवागच्छित्ता जाव वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता गयसुकुमालं अणगारं अपासमाणे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-कहि णं भंते ! से मम सहोदरे कणीयसे भाया गयसुकुमाले अणगारे ? जण्णं अहं वंदामि णंमसामि ! तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—साहिए णं कण्हा ! गयसु-

कुमालेणं अणगारेणं अप्पणो अट्ठे । तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी-कहण्णं भंते ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे ?

भावार्थः—तत्पश्चात्, श्री कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्यमार्ग से होते हुए, जहाँ श्री अरहंत अरिष्टनेमि भगवान् विराज रहे थे, वहाँ आये और उन्हे वन्दना करने के पश्चात् अपने लघुभ्राता नवदीक्षित गजसुकुमार मुनि को वन्दना करने के लिए इधर-उधर ढूँढने लगे । जब उन्हे वहाँ उनका कही भी पता न लगा, तब भगवान् को वन्दना कर के वे बोले—"भगवन् ! वे मेरे छोटे सहोदर भाई, नव-दीक्षित गजसुकुमार अनगार कहाँ है ? उन्हे मैं वन्दना करना चाहता हूँ ।" भगवान् ने फर्माया, हे कृष्ण ! गजसुकुमार अणगार ने आज अपना अर्थ सिद्ध करलिया । कृष्ण ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा-भगवन् ! गजसुकुमार अणगार ने एकही दिन मे अपना अर्थ कैसे सिद्ध कर लिया ?

मूलः—तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं मम कल्लं पुव्वावरण्हकालसमयंसि वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामि णं जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ । तए णं तं गयसुकुमालं अणगारं एगे पुरिसे पासइ २ त्ता आसुरुत्ते जाव सिद्धे । तं एवं खलु कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं

साहिए अप्पणो अट्ठे । तए णं कण्हेसे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—केस णं भंते ! से पुरिसे अपत्थियपत्थिए जाव परिवज्जिए ? जेणं ममं सहोदरं कणीयसं भायरं गयसुकुमालं अणगारं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए ? तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-मा णं कण्हा ! तुमं तस्स पुरिसस्स पदोसमावज्जाहि, एवं खलु कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिन्ने ।

भावार्थ —तत्पश्चात्, श्री अरहन्त अरिष्टनेमि भगवान् ने श्री कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार फर्माया, कि-हे कृष्ण ! कल मध्याह्न को मुझे वन्दना कर, गजसुकुमार अणगार ने अपनी यह इच्छा प्रकट की थी, कि-मैं भिक्षु की प्रतिमा, अर्थात् एक रात्रि का ध्यान, स्मशान मे रहकर करना चाहता हूँ ।" मैने कहा जिससे भी तुम्हे सुख की प्राप्ति हो, करो, तब वे गजसुकुमार अणगार स्मशान में जाकर ध्यानारूढ हो गये । उस समय उन्हे देख कर एक मनुष्य को बडा ही क्रोध उन पर आया । क्रोध के आवेश में उसने गीली मिट्टी लाकर गजसुकुमार के सिर पर चहुँ ओर एक पाल बाँध दी । फिर खैर की अग्नि के सदृश लाल सुर्ख धधकते हुए अङ्गारों को एक फूटे मिट्टी के बर्तन में लेकर, उनके सिर पर उसने उँडेल दिया । जिससे महाभयङ्कर वेदना उन्हें हुई । उस वेदना को हँसते-हँसते समभावों से सहन कर के, केवलज्ञान प्राप्त कर, मोक्ष में वे चले गये । इसीलिए हे कृष्ण ! मैंने कहा,

कि गजसुकुमार अणगार ने अपना कार्य सिद्ध कर लिया । यह सुन कृष्ण बोले-भगवन् ! मृत्यु को निमन्त्रण देकर बुलानेवाला और लज्जाहीन ऐसा कौन-सा धृष्ट मनुष्य है, जिसने मेरे सहोदर लघु भाई को अकाल मे ही इस प्रकार काल-कवलित कर दिया । भगवान् ने कहा-हे कृष्ण ! उस मनुष्य के ऊपर क्रोध न करो । उसने तो गज-सुकुमार अणगार को अपने पापों को समूल निर्मूल कर देने में, बीसों-बिस्वा सहायता पहुँचाई है । फिर ऐसे परम सनेही पुरुष के साथ क्रोध का वर्ताव करना तो, मानो उपकारी के उपकार को धो बहाना है ।

मूलः—कहण्णं भंते ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स णं साहिज्जे दिन्ने ? तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—से नूणं कण्हा ! ममं तुमं पायवंदए हव्वमागच्छमाणे बारवत्तीए नयरीए एगं पुरिसं पाससि जाव अणुपविसिए । जहा णं कण्हा ! तुमं तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिन्ने, एवमेव कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभवसयसहस्ससंचियं कम्मं उदीरेमाणेणं बहुकम्मणिज्जरत्थं साहिज्जे दिन्ने । तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—से णं भंते ! पुरिसे मए कहं जाणियव्वे ! तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—जे णं कण्हा ! तुमं बार-

वईए नयरीए अणुपविसमाणं पासेत्ता ठियए चेव ठिइभेएणं कालं करिस्सइ, तण्णं तुमं जाणेज्जासि एस णं से पुरिसे !

भावार्थ.—भगवन् ! उस मनुष्य ने गजसुकुमार को कैसे सहायता दी ? उत्तर में भगवान् ने फर्माया-हे कृष्ण ! जब तुम मेरे चरणवन्दन के लिए मार्ग मे आ रहे थे, तो द्वारिका नगरी मे तुमने एक वृद्ध पुरुष को ईंट रखते हुए देखा था तुमने उस पर दया लाकर एक ईंट उठा दी और उसे भीतर रख दी। जिससे तुम्हारे साथ वाले सभी पुरुषो ने एक-एक ईंट उठा-कर रख दी। यों सब ईंटे उसी समय शीघ्र ही अन्दर रख गई। कृष्ण ! जिस प्रकार तुमने उस वृद्ध पुरुष को सहायता दी, ठीक उसी प्रकार, उस पुरुष ने गजसुकुमार अणगार को उनके अपने अनेक शतसहस्र अर्थात् लाखों भवो मे सचय किये हुए कर्मो की उदीरणा कर सम्पूर्ण कर्मो को नाश करने मे बड़ी सहायता दी है। भगवन् ! उस मनुष्य को मैं कैसे जान पाऊँगा ? भगवान् ने फर्माया-हे कृष्ण ! जब तुम यहाँ से लौटकर द्वारिका मे प्रवेश करोगे उस समय तुमको आते हुए देखकर, वह मनुष्य वही रुक जायेगा और वही का वही भयभीत होकर मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। बस, उसे देख कर तुम जान लेना, कि यह वही मनुष्य है, जिसने मेरे लघु भाई के प्राण हरण किए है।

मूलः—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव

आभिसेयं हत्थिरयणं तेणेव उवागच्छइ २ त्ता हत्थिं दुरूहइ २ त्ता जेणेव बारवई णयरी जेणेव सये गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं तस्स सोमिलमाहणस्स कल्लं जाव जलंते अयमेयारूवे अज्झत्थिए ४ समुप्पन्ने-एवं खलु कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं पायवंदए निग्गए तं नायमेयं अरहया, विणायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, सिद्धमेयं अरहया भविस्सइ कण्हस्स वासुदेवस्स; तं न नज्जइ णं कण्हे वासुदेवे ममं केण वि कुमारेणं मारिस्सइ त्ति कट्टु भीए सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, कण्हस्स वासुदेवस्स वारवइं नयरिं अणुपविसमाणस्स पुरओ सपक्खिं सपडिदिसिं हव्वमागए।

भावार्थः–तदनन्तर, वे कृष्ण वासुदेव अरहंत अरिष्टनेमि भगवान् को वन्दना कर, अपने प्रधान गजरत्न अर्थात् हाथी पर बैठ, जिस ओर द्वारिका नगरी में अपने महल थे, उधर आ रहे थे। उधर सूर्योदय होने पर सोमिल ब्राह्मण के मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ, कि कृष्ण वासुदेव भगवान् के चरण-वन्दन को गये है। और भगवान् सर्वज्ञ है। उनसे कोई बात छिपी हुई नही है। वे यह सब घटना कृष्ण को कह देगे, तो मुझे कृष्ण वासुदेव न मालूम किस मौत से मारेंगे। ऐसा विचार उत्पन्न होने पर, वह सोमिल ब्राह्मण भयभीत होकर अपने घर से

निकला और एकाएक जिधर से कृष्ण वासुदेव आ रहे थे, उनके समक्ष ही, सम्मुख दिशा से शीघ्र आ निकला।

मूल:—तए णं से सोमिले माहणे कण्हं वासुदेवं सहसा पासेत्ता भीए ठिए य चेव ठिइ-भेयं कालं करेइ, धरिणतलंसि सव्वंगेहिं धसत्ति संनिवडिए। तए णं से कण्हे वासुदेवे सोमिलं माहणं पासइ २ त्ता एवं वयासी—एस णं भो देवाणुप्पिया! से सोमिले माहणे अपत्थिय-पत्थिए जाव परिवज्जिए जेण ममं सहोयरे कनीयसे भायरे गयसुकुमाले अणगारे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए त्ति कट्टु सोमिलं माहणं पाणेहिं कड्ढावेति कड्ढावित्ता तं भूमिं पाणिएणं अब्भोक्खावेइ २ त्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए सयं गिहं अणुपविट्ठे। एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

भावार्थ—उसके बाद वह सोमिल ब्राह्मण सम्मुख आते हुए श्री कृष्ण वासुदेव को एकाएक देख कर डरा और उसके पाँव वही रुक गये। वह स्थितिभेद (आयुष्य-क्षय) के कारण, वही का वही मृत्यु को प्राप्त हो गया। धडाम से वह भूमि पर आ गिरा। भूमि पर पडे हुये उस सोमिल ब्राह्मण के शव को देखकर, कृष्ण वासुदेव

बोले, कि—यह वही मृत्यु को चाहने वाला लज्जा-रहित सोमिल ब्राह्मण है, जिसने मेरे सहोदर छोटे भाई गजसुकुमार अनगार को अकाल मे ही काल का ग्रास बना डाला है। ऐसा कहकर, उस ब्राह्मण के शव को, शहर के बाहर उन्होने फिकवा दिया। और जहाँ उसका शव गिरा था, वहाँ उस भूमि को जल से शुद्ध करवाया। अर्थात् वहाॅ जल का छिड़काव करवा दिया। फिर वहां से चलकर, अपने राज-महल में कृष्ण वासुदेव आये और आनन्दपूर्वक राज्य करने लगे।

हे जम्बू ! श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु ने, अन्तगड-सूत्र के तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन में, यही वर्णन किया है। इस प्रकार, यह आठवाॅ अध्ययन समाप्त हुआ।

मूलः—नवमस्स उ उक्खेओ। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समए णं बारवतीए णयरीए जहा पढमए जाव विहरइ ! तत्थ णं बारवईए नयरीए बलदेवे नामं राया होत्था, वण्णओ। तस्स णं बलदेवस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था, वण्णओ। तए णं सा धारिणी सीहं सुमिणे जहा गोयमे, णवरं सुमुहे णामं कुमारे, पण्णासं कण्णाओ, पन्नासदाओ, चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ, वीसं वासाइं परियाओ सेसं तं चेव, जाव सेतुंजे

सिद्धे, निक्खेवओ। एवं दुम्मुहे वि कूवदारए वि दोण्हं वि बलदेव पिता धारिणी सुया। दारए वि एवं चेव णवरं वसुदेव पिया धारिणी सुए। एवं अणाधिट्ठी वि वसुदेव पिया धारिणी सुए। एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते!

भावार्थः—श्री जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मास्वामी से निवेदन किया कि भगवन्! आठवे अध्ययन मे, जो वर्णन श्री महावीर स्वामी ने किया है, उसको फर्माकर आपने मुझ पर महत्कृपा की है। अब कृपा करके यह फर्मावे कि नौवे अध्ययन मे, श्री महावीर स्वामी के द्वारा क्या फर्माया गया है? श्री सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहा—हे जम्बू! सुनो, उसी काल मे एक द्वारिका नगरी थी, जिसका वर्णन पहले कर चुके है। उस द्वारिका नगरी में, बलदेव महाराज अपनी प्राप्त जागीरी पर सानन्द आधिपत्य करते हुए निवास करते थे। उनके धारिणी नामक एक परमाज्ञाकारिणी रानी थी। एक दिन, उसी धारिणी रानी को शैया मे सोते हुए, पिछली रात्रि मे, सिह का स्वप्न दृष्टिगोचर हुआ। वह सजग हुई। अपने पतिदेव से स्वप्न का जिक्र किया। सूर्योदय होने पर स्वप्न फल के विशेषज्ञो से, स्वप्न का फलाफल पुछवाया गया। यहा भी बालक का जन्म, बाल्यकाल आदि सब गौतम कुमार की भॉति ही समझले। विशेपता केवल इतनी है, कि उनका नाम 'सुमुखकुमार' रक्खा गया।

यौवनावस्था प्राप्त होने पर पचास कन्याओं के साथ उनका विवाह किया गया। वधु-पक्ष की तरफ से गृह-सम्बन्धी अन्य आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त, दहेज में पचास करोड़ का नकद धन भी प्राप्त हुआ। कुछ समय के पश्चात् भगवान् अरहन्त अरिष्टनेमि लोक कल्याण के हेतु, ग्रामानुग्राम विचरण करते हुये, वहाँ पधारे। उनका उपदेश श्रवण कर 'सुमुखकुमार' के मन में संसार के प्रति उपराम हो आया। माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर वे दीक्षित हुए। थोड़े ही काल में उन्होंने चौदह-पूर्व का ज्ञानाभ्यास प्राप्त कर लिया। बीस वर्ष पर्यन्त चारित्र-पालन कर अन्तिम समय में, सन्थारा करके, शत्रुञ्जयपर्वत पर उन्होंने मोक्ष को प्राप्त किया। अर्थात् उन्होने सिद्धत्व को अपने अधीन किया। इसी प्रकार बलदेव राजा के पुत्र और धारिणी के अङ्गज 'दुर्मुखकुमार' और 'कूपदारक कुमार' ने भी दीक्षा धारण कर अन्तिम समय में, सन्थारा करके, सिद्ध-पद पाया। वसुदेव के पुत्र, तथा धारिणी के अङ्गज 'दारुक कुमार' और 'अनाधृष्टि कुमार' इन दोनों ने भी इसी तरह दीक्षा धारण की। और, मोक्ष में पदार्पण किया। इस प्रकार हे जम्बू! अन्तगढ़-सूत्र के तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययनो में भगवान् महावीर प्रभु ने ऐसा ही वर्णन किया है, जो मैंने तुम्हें कह सुनाया है।

। इति तृतीयोवर्गः ।

चतुर्थोवर्गः

मूलः—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, चउत्थस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—जालि, मयालि, उवयालि, पुरिससेणे य वारिसेणे य । पज्जुन्न संब अनिरुद्धे, सच्चनेमी य दढ़नेमी । जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समए णं वारवई णामं णयरी होत्था । जहा पढमे कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ ।

भावार्थः—फिर जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया, कि—हे भगवन् ! श्रमण भगवन्त श्री

महावीर प्रभु, जो मुक्ति में पधारे, उन्होने आठवे अङ्ग श्री अन्तगढ़-सूत्र के तृतीय वर्ग में, जो विषय वर्णन किया है, उसे मैंने आपके श्री मुख से श्रवण कर लिया है। हे भगवन् ! अब श्री अन्तगढ-सूत्र के चौथे वर्ग में भगवान् महावीर स्वामी के द्वारा कौन सा विषय कथन किया गया है, उसे कहने की कृपा करे। जम्बू ! लो सुनो। अन्तगढ़-सूत्र के चतुर्थ वर्ग मे, भगवान् महावीर स्वामी ने दस अध्ययन फर्माये है। वे दस अध्ययन क्रमवार यों है:-(१) जालि, (२) मयालि- (३) उवयालि, (४) पुरुषसेन, (५) वारिसेन, (६) प्रद्युम्न, (७) शाम्ब, (८) अनिरुद्ध, (९) सत्यनेमि और (१०) दृढ़नेमि। इन दसों कुमारों के नाम से दस अध्ययन है। हे भगवन् ! प्रथम अध्ययन का क्या मतलब है ? जम्बू ! उस समय जो द्वारिका नामक एक परम सुन्दर नगरी थी, और जिसका वर्णन पहले कर चुके है, वहाँ श्री कृष्ण वासुदेव राज करते थे।

मूल:—तत्थ णं बारवतीए णयरीए वसुदेवे राया धारिणी देवी, वण्णओ। जहा गोयमो णवरं जालिकुमारे पण्णासओ दाओ, बारसंगी सोलसवासा परियाओ, सेसं जहा गोयमस्स जाव सेत्तुंजे सिद्धे। एवं मयालि उवयालि पुरिससेणे य वारिसेणे य एवं पज्जुन्ने वि त्ति, णवरं कण्हे पिया रुप्पिणी माता। एवं संबे वि नवरं जंबवई माता। एवं अनिरुद्धे वि, णवरं पज्जुन्ने पिया वेदब्भी माया। एवं सच्चनेमी, नवरं समुद्दविजये पिया सिवा माता।

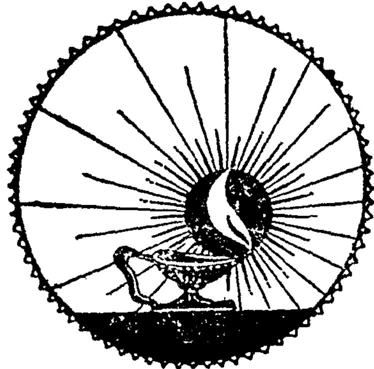
एवं दढनेमी वि सव्वे एगगमा । चउत्थस्स वग्गस्स निक्खेवओ ।

भावार्थः—उस द्वारिका नगरी मे 'वसुदेव' नामक एक राजा, अपने अधीन के ग्रामो पर आधिपत्य रखते हुये निवास करते थे । उनके धारिणी नामक आज्ञाकारिणी एक रानी थी । स्वप्न के नौ मास व्यतीत होने पर धारिणी के एक पुत्र-रत्न पैदा हुआ । यौवनावस्था मे पचास कन्याओं के साथ उनका विवाह सम्पादन हुआ । दहेज मे भी, पर्याप्त धन अर्थात् पचास करोड़ सौनैयो की रकम उन्हे प्राप्त हुई । किसी दिन भगवान् का उपदेश श्रवण कर वैराग्य का वेग इनके हृदय में उमड़ पड़ा । और उसके परिणाम-स्वरूप, उन्ही से दीक्षा भी इन्होंने ली । बारह अङ्ग—शास्त्रों का साँगोपाँग अध्ययन इन्होने किया । सोलह वर्ष पर्यन्त चारित्र पालन कर, अन्तिम समय में, गौतमकुमार की भाँति, इन्होने भी सन्थारा किया । तथा शत्रुञ्जय पर्वत से निर्वाण-पद को प्राप्त किया । इसी प्रकार मयालि, उवयालि, पुरुषसेन, वारिसेन और प्रद्युम्न कुमारो का वर्णन भी समझना चाहिये । भेद केवल इतना ही है, कि इनके पिता का नाम कृष्ण और माता का नाम रुक्मिणी था । इसी तरह शाम्ब कुमार ने भी दीक्षा धारण की । इनके पिता तथा माता क्रमशः 'कृष्ण' और 'जाम्बवती' थे । 'अनिरुद्ध कुमार' ने भी इसी तरह दीक्षा धारण की थी । इनके पिता 'प्रद्युम्न' और माता वैदर्भी थी । 'सत्यनेमि' और 'दृढ़नेमि' इन दोनो कुमारो के दीक्षा-ग्रहण का विधान इसी प्रकार का था । इनके पिता का नाम 'समुद्र-विजय' और माता का नाम शिवा-

देवी था । इन सभी कुमारों की शिक्षा, दीक्षा आदि का क्रम प्रायः सर्वत्र एक ही सा था ।

हे जम्बू ! चौथे वर्ग मे, यों इन दस अध्ययनो का वर्णन किया गया है, जो मैं तुझे सुना चुका हूँ ।

। इति चतुर्थो वर्गः ।



पञ्चमोवर्गः

मूलः—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा-पउमावई य गोरी, गंधारी, लक्खणा सुसीमा य । जंबवई, सच्चभामा, रुप्पिणि, मूलसिरी, मूलदत्ता वि ॥ १ ॥ जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ।

भावार्थः—हे भगवन् ! अन्तगढ—सूत्र के चौथे वर्ग मे भगवान् महावीर स्वामी ने जो वर्णन किया, उसे आपके पवित्र मुखारविन्द से, मैने अपने कानो के द्वारा सुन लिया । अब कृपा कर यह बताइये, कि पॉचवे वर्ग में, भगवान् ने किस विषय का वर्णन किया है ।

जम्बू ! पॉचवे वर्ग में दस अध्ययन है । वे दस अध्ययन इस प्रकार हैः—(१) पद्मावती, (२) गौरी, (३)

गान्धारी, (४) लक्ष्मणा, (५) सुसीमा, (६) जाम्बवती, (७) सत्यभामा, (७) रुक्मिणी, (९) मूलश्री और (१०) मूलदत्ता । इन दसों रानियो के ये दस अध्ययन है ।

हे भगवन् ! इन दस अध्ययनों मे से प्रथम अध्ययन मे किस विषय का वर्णन किया है, वह कृपा करके आप मुझे समझाइये ।

मूलः—एवं खलु जंबू ! तेणं काले णं तेणं समए णं बारवई णामं णयरी होत्था, जहा पढमे जाव कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ । तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई नामं देवी होत्था, वण्णओ । तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमि समोसढे जाव विहरई । कण्हे निग्गए जाव पज्जुवासइ । तए णं सा पउमावई देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठ-तुट्ठ जहा देवई जाव पज्जुवासइ । तएणं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावतीए देवीए जाव धम्मकहा, परिसा पडिगया । तए णं कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठ-नेमिं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—इमीसे णं भंते ! बारवत्तीए णयरीए दुवा-लस्स जोयण आयामाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए किंमूलाए विणासे भविस्सइ ?

'कण्हाइ' अरहं अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा, इमीसे वारवतीए णयरीए दुवालस्सजोयण आयामाए नव जोयणं जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवायणमूलाए विणासे भविस्सइ ।

भावार्थ—हे जम्बू ! इस प्रकार, उस काल मे, जो द्वारिका नामक एक परम सुन्दर नगरी थी, वहाँ कृष्ण वासुदेव राजा राज्य करते थे । इस नगरी और राज्य का विशेप वर्णन पहले हो चुका है । उन कृष्ण वासुदेव की पद्मावती नामक एक परमाज्ञाकारिणी रानी थी । उसी अवधि मे किसी एक दिन, श्री अरहत अरिष्टनेमि भगवान् भी विचरते-विचरते वहाँ पधार गये । कृष्ण, श्री अरिष्टनेमि की सेवा मे उपस्थित हुए । उधर इनकी रानी श्री पद्मावती को भी प्रभु के आगमन का सु-सवाद श्रवण कर बड़ी प्रसन्नता हुई और वह भी प्रभु की सेवा मे आ उपस्थित हुई । भगवान् ने श्री कृष्ण वासुदेव, पद्मावती रानी, तथा उपस्थित जनता आदि को अपनी पीयूषवर्षी वाणी के द्वारा उपदेश प्रदान किया । धर्म-कथा श्रवण कर जनता तो अपने-अपने घरो को लौट गई । परन्तु कृष्ण वासुदेव, भगवान् को वन्दना करके बोले—भगवन् ! नौ योजन चौडी, बारह योजन लम्बी, देवलोक के सदृश इस द्वारिका पुरी का विनाश, किस प्रकार और किस कारण से होगा ? उत्तर में भगवान् श्री अरिष्टनेमि ने फर्माया—हे कृष्ण ! तुम्हारे कौटुम्बिक कुमारों की हरकतो से रुष्ट होकर, द्वैपायन ऋषि

अग्निकुमार देव बनेंगें । और उन्हीं के द्वारा तुम्हारी इस बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी, देवलोक के सदृश मनोहर द्वारिका नगरी का विनाश होगा ।

मूलः—तए णं कण्हस्स वासुदेवस अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अयमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पन्ने धन्ना णं ते जालि, मयालि, उवयालि, पुरिससेण, वारिसेण, पज्जुन्न, संब, अणिरुद्ध, दढ़नेमि, सच्चनेमिप्पभियओ कुमारा जे णं चिच्चा हिरण्णं जाव परिभाएत्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियं मुंडा जाव पव्वया, अहं णं अधन्ने अकयपुण्णे रज्जे य जाव अंतेउरे य माणुस्सएसु य काम भोगेसु मुच्छिए नो संचाएमि अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए जाव पव्वइत्तए । कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—से नूणं कण्हा ! तव अयं अज्झत्थिए समुप्पन्ने—धन्ना णं ते जाली जाव पव्वइत्तए, से नूणं कण्हा अयमट्ठे समट्ठे ? हंता अत्थि ।

भावार्थ.—तत्पश्चात्, श्री अरहन्त अरिष्टनेमि प्रभु के समीप यह अर्थ सुनकर उन श्री कृष्ण वासुदेव को, इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ, कि—जालि, मयालि, पुरुषसेन, वारिसेन, प्रद्युम्न साम्ब, अनिरुद्ध, दृढ़नेमि,

सत्यनेमि, आदि कुमारों को धन्य है, जिन्होने अपनी देव-दुर्लभ सम्पत्ति को छोड़कर, अरिष्टनेमि प्रभु के शरण मे आ दीक्षा धारण की। परन्तु मै महान् अभागी हूँ। मैने पूर्ण पुण्योपार्जन नही किये। जिससे मै राज्य और अन्त पुर तथा मनुष्य-सम्बन्धी काम भोगो मे निमग्न हो रहा हूँ। मै श्री अरिष्टनेमि भगवान् की शरण ग्रहण कर दीक्षा धारण करने मे समर्थ नही हूँ। इस प्रकार कृष्ण को चिन्तातुर देख, भगवान् ने उन्हे सम्बोधित करके कहा—"हे कृष्ण वासुदेव, तुम्हे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ है, कि—जालि, आदि कुमारो को धन्य है।" कृष्ण बोले—हाँ, प्रभु ! मेरे हृदय मे, यह विचार अवश्य उत्पन्न हुआ है।

मूलः—तं नो खलु कण्हा ! तं एवं भूयं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जन्नं वासुदेवा चइत्ता हिरन्नं जाव पव्वइस्संति। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—न एवं भूयं वा जाव पव्वइस्संति ? कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा ! सव्वे वि य णं वासुदेवा पुव्वभवे नियाणकडा, से एएणट्ठेणं कण्हा ! एवं वुच्चइ न एयं भूयं जाव पव्वइस्संति।

भावार्थः—हे कृष्ण ! वासुदेव अपनी सम्पत्ति को छोड दीक्षा अङ्गीकार करले, ऐसा न तो कभी हुआ ही है, न होता ही है, और न कभी होगा ही। भगवन् ! ऐसा क्यो ? भगवान् ने इसके उत्तर मे कहा, हे कृष्ण ! सब ही वासुदेव पूर्वभव मे नियाणा (निदान) कर लेते है। उसी के प्रभाव से हे कृष्ण ! वासुदेव कभी भी

दीक्षा अङ्गीकार नही करते है।

मूलः—तए णं से कण्हं वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—अहं णं भंते ! इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं उववज्जिस्सामि ? तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा ! तुमं बारवईए णयरीए सुरदीवायणकुमारकोवनिद्दड्ढाए अम्मापिइनियगविप्पहूणे रामेण बलदेवेण सद्धिं दाहिणवेयालिं अभिमुहे जोहिट्ठिल्लपामोक्खाणं पंचण्हं पंडवाणं पंडुरायपुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए कोसंबवणकाणणे नग्गोहवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीयवत्थपच्छाइयसरीरे जरकुमारेणं तिक्खेणं कोदंडविप्पमुक्केणं इसुणा वामे पाये विद्धे समाणे कालमासे कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उज्जलिए नरए नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि।

भावार्थ.—तत्पश्चात्, श्री कृष्ण वासुदेव ने, श्री अरहन्त अरिष्टनेमि प्रभु से इस प्रकार पूछा—भगवन् ! मैं यहाँ से आयुष्य पूर्ण करके कहाँ जाऊँगा ? तथा कहाँ उत्पन्न हूँगा ? उत्तर मे प्रभु ने फर्माया, कि—हे कृष्ण ! एक दिन यह द्वारिका नगरी अग्निकुमार देवताओ में जन्म लिये हुए द्वैपायन ऋषि के कोप से नष्ट हो जायेगी। उस

समय, माता पिता और स्वजनों से रहित होकर, तुम अकेले बलदेवजी के साथ, दक्षिण समुद्र के किनारे पॉडु राजा के पुत्र, युधिष्ठिरादि पॉच पॉडवो के निवास-स्थल पॉडु मथुरा की ओर प्रस्थान करते हुए मार्ग में कौशाम्बी नगरी के निकटस्थ वनखण्ड मे, एक विशाल वटवृक्ष के नीचे, पीताम्बर (पीले वस्त्र) से शरीर ढँककर, पृथ्वी के एक उपल-खण्ड पर बैठोगे। उस समय जराकुमार के द्वारा चलाया हुआ तीक्ष्ण बाण, तुम्हारे बाये पॉव मे लगेगा और तुम आयुष्य पूर्ण कर तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी मे नैरयिक रूप मे उत्पन्न होगे।

मूल—तए णं कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म ओहय जाव झियाइ। कण्हाइ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—मा णं तुमं देवाणुप्पिया! ओहय जाव झियाहिं। एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जम्बूदीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए पुंडेसु जणवएसु सयदुवारे बारसमे अममे नामं अरहा भविस्ससि, तत्थ तुमं बहूइं वासाइं केवलिपरियायं पाउणेत्ता सिज्झिहिसि।

भावार्थ—तदनन्तर, वे श्री कृष्ण वासुदेव, श्री अरहन्त अरिष्टनेमि के द्वारा यह बात सुनकर बड़े ही गम्भीर

विचार-सागर में गोते खाने लगे। तब भगवान्, श्री कृष्ण का सम्बोधित करके बोले हे—कृष्ण! तुम किसी भी प्रकार का कोई भी विचार मत करो। वहाँ से निकलकर इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे, भविष्य के उत्सर्पिणी समय मे 'पुण्ड' देश के अन्तर्गत, 'शतद्वार' नामक नगर में तुम 'अमम' नामक बारहवे तीर्थंकर होगे। वहाँ तुम वहुत वर्षो तक केवलिपर्याय पालन कर सिद्धि प्राप्त करोगे।

मूलः—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ तुट्ठं अप्फोडेइ २ त्ता वग्गइ २ त्ता तिवइं छिंदइ २ त्ता सीहनायं करेइ २ त्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता तमेव अभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूहइ २ त्ता जेणेव बारवई णयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए, अभिसेयहत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ २ त्ता जेणेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ २ त्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—

भावार्थः—तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव, श्री अरहन्त अरिष्टनेमि भगवान् के मुँह से इस अर्थ को सुन कर तथा हृदयङ्गम करके, बड़े ही प्रसन्न हुए। और, बाँह फटकार कर एक मल्ल की भाँति अपना पद-न्यास करके खड़े

हो गये। तब सिंहनाद कर भगवान् को वन्दना करने के पश्चात् वे हाथी पर बैठे। और द्वारिका नगरी की ओर, जिधर अपने महल थे उधर आये। हाथी से उतरकर बाहर की सभा मे जहाँ सिंहासन था, वहाँ वे आये और पूर्व की तरफ मुँह कर सिंहासन पर जा बैठे। फिर सेवक पुरुषों को बुलाकर वे यो बोले—

मूलः—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बारवईए णयरीए सिंघाडग जाव उवघोसे-माणा एवं वयह, एवं खलु देवाणुप्पिया! बारवतीए णयरीए दुवालस्सजोयणआयामाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवायणमूलो विणासे भविस्सइ, तं जो णं देवाणु-प्पिया! इच्छइ वारवतीए णयरीए राया वा जुवराया वा ईसरे तलवरे माडंबिय कोडुंबिय इब्भसेट्ठी वा देवी वा कुमारो वा कुमारी वा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे जाव पव्व-इत्तए तं नं कण्हे वासुदेवे विसज्जइ पच्छातुरस्स विय से अहापवित्तं वित्तं अणुजाणइ महया इड्ढीसक्कारसमुदएण य से निक्खमणं करेइ दोच्चं पि तच्चं पि घोसणवं घोसहे घोसइत्ता ममयं एयं आणत्तियं पच्चप्पिणह! तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंत्ति।

भावार्थः—हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और इस द्वारिका नगरी के प्रत्येक बाजार मे ड्यौडी पीट कर यों बोलो,

कि–हे देवानुप्रिय ! इस विशाल और स्वर्ग के समान, द्वारिका पुरी का विनाश असुर-कुमार मे उत्पन्न हुए, द्वैपायन ऋषि के द्वारा होगा। अतएव इस द्वारिका के बड़े जागीरदार, राजा, युवराज, राजा के प्रधान, राजा के प्रिय पुरुष, छोटे जागीरदार, कोतवाल, कुटुम्ब के स्वामी, अर्बपति सेठ, राणियाँ, कुमार और कुमारिका, आदि सभी मे से, जिस किसी देवानुप्रिय को इस द्वारिका नगरी मे भगवान् के पास दीक्षा धारण करने की इच्छा हो, उन्हे स्वय श्री कृष्ण दीक्षा के लिए आज्ञा प्रदान करते है। उनका दीक्षा महोत्सव वे बड़े ही समारोह से करेगे। तथा दीक्षित के पीछे रहे हुए अवशेष कुटुम्ब का प्रतिपालन भो वे सदा के लिए करते रहेगे। इस प्रकार दो तीन बार, घोषणा करके, पीछे मुझे सूचित करो, कि मै आपका फर्माया हुआ कार्य कर आया हूँ। ऐसी आज्ञा पाते ही, वह कौटुम्बिक पुरुष शहर मे जाकर घोषणा कर आये।

मूलः–तए णं सा पउमावईदेवी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ तुट्ठ जाव हियया अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-सद्दहामि णं भंते ! णिग्गंथं पवयणं से जहेयं तुब्भे वदह, जं नवरं देवाणुप्पिया ! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि। अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिबंधं करेहि।

भावार्थः-तत्पश्चात् उस पद्मावती देवी ने श्री अरहन्त अरिष्टनेमि भगवान् के मुख से धर्म को श्रवण कर उसे प्रसन्नतापूर्वक हृदयङ्गम किया। और आनन्दित होती हुई, भगवान् को वन्दना करके बोली-भगवन् ! मै निर्ग्रंथो के प्रवचन पर हार्दिक श्रद्धा करती हूँ। तथा मै यह मानती हूँ, कि जिस प्रकार पुण्य-पाप का स्वरूप आपने फर्माया है, वह ठीक वैसा ही है। अब मै ससार के जन्म-मृत्यु के विकराल भय से ऊब उठी हूँ। इसलिए कृष्ण वासुदेव से पूछकर आपके समीप दीक्षा धारण करना चाहती हूँ। भगवान् बोले-पद्मावती, जैसे भी तुम्हें सुख हो वैसा ही करो; परन्तु 'शुभस्य शीघ्रम्' के नाते इसमे तनिक भी विलम्ब मत करो।

मूलः-तए णं सा पउमावई देवी धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ २ त्ता जेणेव वारवईणयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता धम्मियाओ जाणाओ पच्चोरुहइ २. त्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयल जाव कट्टु कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि। अहासुहं देवाणुप्पिए ! तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबिए पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! पउमावईए देवीए महत्थं निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह

उवट्ठवित्ता एयं आणत्तियं पच्चप्पिणह । तए णं ते कोडुंबिया जाव पच्चप्पिणंति ।

भावार्थ.—उसके बाद, वह पद्मावती रानी धार्मिक रथ मे बैठकर पुनः अपने महलों की ओर आई । रथ से उतर कर जहाँ श्री कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ गई । तथा उन से हाथ जोड़ कर बोली—हे स्वामी ! आपकी आज्ञा होने पर मैं अरिष्टनेमि भगवान् के द्वारा दीक्षित होना चाहती हूँ । कृष्णजी ने कहा—प्रिये ! तुम्हें मेरी आज्ञा है । जिससे सुख तुम्हे प्राप्त हो, वैसा ही तुम करो । इस प्रकार पद्मावती रानी को आज्ञा देने के पश्चात् कृष्णजी ने अपने विश्वासपात्र मनुष्यो को बुलवाकर कहा—कि पद्मावती रानी के 'योग्य बडे समारोह के साथ, दीक्षा महोत्सव की शीघ्र तैयारी करो । आज्ञा प्राप्त होते ही, उन मनुष्यों ने कृष्णजी की इच्छानुसार, महोत्सव की तैयारी कर दी । तदनन्तर उन्होने श्री कृष्ण को वैसी ही सूचना भी दे दी ।

मूलः—तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देवीं पट्टयं दुरूहइ २ त्ता अट्ठसएणं सोवन्न-कलसेणं जाव निक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ २त्ता सव्वालंकारविभूसियं करेइ २ त्ता पुरिस-सहस्सवाहिणिं सिवियं दुरूहावेइ २ त्ता बारवईणयरीए मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ २ त्ता जेणेव रेवयए पव्वए जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीयं ठवेइ २ त्ता पउमावई

देवी सीयाओ पच्चोरुहइ २ त्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ २ त्ता वंदति णमंसति वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

भावार्थ—तत्पश्चात्, उन श्री कृष्ण वासुदेव ने पद्मावती देवी को पाट पर बिठाया। एक सौ आठ स्वर्ण कलशो से यावत् दीक्षा अभिषेक उसका किया। सर्व प्रकार के आभूषणो से विभूषित उसे की। फिर सहस्र पुरुषवाहिनी शिविका मे उसे बिठला कर बडे ही समारोह के साथ द्वारिका नगरी के सार्वजनिक मार्गो से होते हुए, रैवतगिरि के निकटस्थ सहस्राम्र वन नामक वन मे उसे लाये। वहॉ शिविका से उतरकर पद्मावती देवी ने तथा कृष्ण ने भगवान् अरहन्त अरिष्टनेमि के चरणो मे जा तिक्खुत्तो के पाठ से सप्रेम वन्दना की। वन्दना कर लेने के पश्चात्, वे कृष्ण वासुदेव भगवान् से इस प्रकार बोले—

मूलः—एस णं भंते ! मम अग्गमहिसी पउमावई नामं देवी इट्ठा कंता पिया मणुन्ना मणामा अभिरामा जाव किमंग पुण पासणयाए ? तन्नं अहं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणि-भिक्खं दलयामि, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया सिस्सिणिभिक्खं। अहासुहं ! तए णं सा पउ-

मावई देवी उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ २ त्ता सयमेव आभरणालंकारं ओमुयइ २ त्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ २ त्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अरहंअरिट्ठनेमिं वंदई णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—आलित्ते जाव धम्ममाइक्खितं।

भावार्थः—हे भगवन् ! यह पद्मावती नामक देवी मेरी पट्टरानी है । मेरा इसके साथ अत्यन्त स्नेह है। यह प्रेम को उत्पन्न करने वाली है । और मेरे मन को प्रिय है । इसकी शान्त मुद्रा को बारम्बार देखते हुए मुझे कभी अरुचि उत्पन्न नही होती । जिस प्रकार गूलर के फूलों का नाम तक सुनना भी दुर्लभ है, तो फिर उसके फूलों का देखना तो सचमुच में तो बड़ा ही दुर्लभ होना चाहिए । इसी प्रकार इस रानी का नाम सुनना भी जब कठिन है, तो फिर इसे देखने की तो सामर्थ्य ही किसकी है ! परन्तु आज यह संसार के जन्म-मृत्यु के दुखों से ऊब उठी है । इसलिए दीक्षा ग्रहण करती है । हे भगवन् ! मैं, इसीलिए, आपको इसे अपनी शिष्या के रूप में भिक्षा के समान समर्पण करता हूँ । इसे आप स्वीकार करे । उत्तर में भगवान् ने फर्माया, हे कृष्ण जिससे भी तुम्हें सुख हो करो । तत्पश्चात्, उस पद्मावती पटरानी ने उत्तर-पूर्व के मध्य की दिशा, ईशन कोण मे जाकर, स्वयं अपने हाथों से अपने गहनों को उतार फेंका । और, स्वयं पंच मुष्टि लोच कर के साध्वी का वेष धारण कर लिया । फिर भगवान् के पास जाकर वन्दना उन्हें की । तब वह यूँ बोली—प्रभो ! संसार दुखों का सागर है । चारों ओर मोह माया की

आग यहाँ धधक रही है। अतः कृपा करके अब साध्वो-जीवन का धर्म आप मुझे फर्मावे।

मूलः—तए णं अरहा अरिट्ठनेमी पउमावइ देविं सयमेव पव्वावेइ २त्ता सयमेव मुंडावेइ सयमेव जक्खिणीए अज्जाए सिस्सिणिं दलयइ। तए णं सा जक्खिणी अज्जा पउमावई-देविं सयं पव्वावेइ जाव संजमियव्वं। तए णं सा पउमावई जाव संजमइ। तए णं सा पउमावई अज्जा जाया ईरियासमिया जाव गुत्तबंभयारिणी।

भावार्थ—यो सुनकर, श्री अरहन्त अरिष्टनेमि भगवान् ने स्वयं पद्मावती रानी को प्रव्रजितकर दीक्षित किया। और उसे, यक्षिणी नामक एक साध्वी को शिष्या-रूप मे प्रदान कर दी। इस यक्षिणी आर्या ने पद्मावती साध्वी का स्वयं अपने हाथों केश लुञ्चन किया और संयम की क्रियाओं से पूर्ण—रूपेण परिचित उसे किया। वह पद्मावती साध्वी भी तब अपनी गुराणीजी की बताई हुई क्रिया के पालन करने मे जुट पड़ी। अब वह पद्मावती आर्या पाँच समिति तीन गुप्ति से युक्त तथा नव वाड़ सहित ब्रह्मचारिणी हुई।

मूलः—तए णं सा पउमावई अज्जा जक्खिणीए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारसंगाइं अहिज्जइ बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं

तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरइ तए णं सा पउमावई अज्जा बहुपडिपुन्नाइं वीसं वासाइं सामन्नपरियाणं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेइ २ त्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ २ त्ता जस्सट्ठाए कीरई नग्गभावे जाव तमट्ठं आराहेइ चरिमुस्सासेहिं सिद्धा।

भावार्थः—फिर तो उन पद्मावती आर्याजी ने, अपनी गुराणी यक्षिणी आर्याजी से सामायिक से लगाकर ग्यारह अङ्ग तक ज्ञानाध्ययन किया। साथ ही साथ उपवासो मे, बेला, तेला, चोला, पँचोला, आदि पन्द्रह पन्द्रह, महीने-महोने तक की, विविध प्रकार की तपश्चर्या करती हुई, वह अपनी आत्मा को कुन्दन के समान उज्ज्वल करती रही। इसी प्रकार, पूरे-पूरे बीस वर्ष तक उन्होंने दीक्षा धर्म का पालन किया। अन्त में जब उनका शरीर ऐसी उग्र तपस्या के कारण दुर्बल हो गया और अन्तिम समय भी आ पहुँचा, तब उन दिनों, पूरे एक महीने का अनशन व्रत रख, अपने सर्व कर्मो का एकान्त क्षय उन्होने कर डाला। तथा, अन्तिम श्वास के पश्चात्, वे मोक्ष पहुँचीं।

मूलः—उक्खेवओ य अज्झयणस्स। तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णयरी रेयवए उज्जाणे नंदणवणे, तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हे वासुदेवे राया होत्था, तस्स णं कण्हं-वासुदेवस्स गोरी देवी; वण्णओ, अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे, कण्हे णिग्गए, गोरी जहा

पउमावई तहा णिग्गया, धम्मकहा, परिसा पडिगया, कण्हे वि पडिगए। तए णं सा गोरी जहा पउमावई तहा णिक्खंता जाव सिद्धा। एवं गंधारी, लक्खणा, सुसीमा, जंबवई, सच्च-भामा, रुप्पिणी, अट्ठ वि पउमावई सरिसाओ अट्ठ अज्झयणा।

भावार्थ.—श्री सुधर्मा स्वामी से जम्बू स्वामी बोले—भगवन् ! अन्तगड-सूत्र के पांचवे वर्ग के दूसरे अध्ययन में, जिस विषय का आपने अपने श्री-मुख से वर्णन किया है, उसे भली भाँति मैने श्रवण कर लिया। परन्तु तीसरे अध्ययन मे, भगवान् महावीर स्वामी ने जो भाव दर्शाये है, उनके सम्बन्ध मे अब कुछ कहने की कृपा करे। तब सुधर्मा स्वामी ने फर्माया, हे जम्बू ! सुनो उस काल में भी वही द्वारिका नगरी थी। उसके पास रैवतगिरि नामक एक विशाल पर्वत था। और, नन्दनवन नामक अति ही भव्य एक बाग वहाँ था। उस द्वारिका मे, उस समय कृष्ण वासुदेव राज कर रहे थे। इन कृष्ण वासुदेव के गौरी नामक एक पटरानी थी। श्री अरहन्त अरिष्टनेमि प्रभु देश-देशान्तरो में विचरते हुए, वहाँ पधारे। श्री कृष्ण वासुदेव प्रभु की सेवा मे उपस्थित हुए। उनकी पटरानी गौरी भी वहाँ गई। जिस प्रकार पद्मावती देवी ने वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा ग्रहण की, उसी प्रकार गौरी पटरानी ने भी दीक्षा धारण की। ऐसे ही गान्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा और रुक्मिणी. इन छहो पटरानियों ने भी, गौरी तथा पद्मावती के सदृश दीक्षा धारण की और अन्तिम समय मे सभी ने

अनशन व्रत कर अपने-अपने कर्मो का क्षय किया। और समय पाकर के सब की सब वे मोक्ष में पहुँची। इन छहो रानियो के छ अध्ययन, और गौरी एवं पद्मावती रानी इन दो के दो अध्ययन, यों ये कुल आठ अध्ययन हुए। ये सभी रानियाँ, कृष्ण वासुदेव की पटरानियाँ थी।

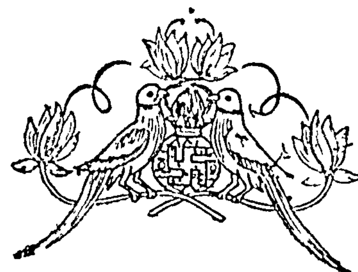
मूलः—उक्खेवओ य नवमस्स। तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवइणयरीए रेवयए पव्वए नंदनवणे उज्जाणे कण्हे राया। तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हस्स वासुदेवस्स पुत्तए जंबवतीए देवीए अत्तए संबे नामं कुमारे होत्था, अहीण०। तस्स णं संबस्स कुमारस्स मूलसिरी नामं भारिया होत्था, वण्णओ। अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे। कण्हे णिग्गए, मूलसिरी विणिग्गया जहा पउमावई, नवरं देवाणुप्पिया! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि, जाव सिद्धा। एवं मूलदत्तावि।

भावार्थः—जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मास्वामी से कहा, कि—हे भगवन्! अन्तगड—सूत्र के पाँचवे वर्ग के आठवे अध्ययन में, जो भाव आपने फर्माये, उनका विधि—पूर्वक श्रवण मैने किया। अब नवे अध्ययन के जो भाव है, उन्हें फरमाने की कृपा करें।

हे जम्बू! उस काल मे द्वारिका नगरी, रैवतगिरि और नन्दनवन आदि से बड़ी ही सुशोभित थी। कृष्ण

वासुदेव वहाॅ के राजा थे । उनका पुत्र और जाम्बवती का अङ्गज साम्ब नामक कुमार था । इन साम्ब कुमार के 'मूलश्री' नामक पत्नी थी । श्री अरहन्त अरिष्टनेमि भगवान् विचरते हुए एक दिन वहाॅ पधारे । भगवान् के शुभागमन का सन्देश प्राप्त होते ही कृष्ण वासुदेव भगवान् की सेवा मे पहुँचे । मूलश्री भी वहाॅ पहुॅची । भगवान् ने उन्हे वैराग्यमय प्रवचन सुनाया । प्रवचन सुन, मूलश्री का मन ससार से हट गया । उसके मन मे वैराग्य के भाव जागृत हो गये । उसने श्रीकृष्ण वासुदेव से आज्ञा सम्पादन कर, पद्मावती पटरानी की भाॅति दीक्षा अङ्गीकार की । और, यथा-समय अन्त मे वह भी मोक्ष-धाम को पहुँची । इसी प्रकार, साम्ब कुमार की द्वितीय पत्नी मूलदत्ता ने भी दीक्षा धारण कर, अन्त मे निर्वाण-पद को प्राप्त किया ।

। इति पञ्चमो वर्गः ।



षष्टमो वर्गः

मूलः—जइ णं भंते छट्ठमस्स उक्खेवओ। नवरं सोलस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा-मंकाई, किंकमे चेव मोग्गरपाणी य कासवे। खेमए धितिधरे चेव, केलासे हरिचंदणे॥ वारत्त सुदंसण पुन्नभद्द सुमणभद्द सुपइट्ठे मेहे। अइमुत्ते अ अलक्खे अज्झयणाणं तु सोलसयं॥ जइ सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते!

भावार्थ.—श्री सुधर्मा स्वामी से जम्बू स्वामी बोले—भगवन्! पञ्चमवर्ग के जो भाव आपने फर्माये, वह मैंने सुने। पर छट्ठे वर्ग में क्या अर्थ कहा है? कृपया उसे फर्मावे।

हे जम्बू! छठे वर्ग के सोलह अध्ययन है। वे इस प्रकार हैः—

(१) मङ्काई, (२) किङ्कम, (३) मुद्गरपाणि, (४) काश्यप, (५) क्षेमक, (६) धृतिधर, (७) कैलाश, (८) हरिचन्दन, (९) वारत्त, (१०) सुदर्शन, (११) पूर्णभद्र, (१२) सुमनभद्र, (१३) सुप्रतिष्ठ, (१४) मेघ, (१५) अतिमुक्त और (१६) अलक्ष। इन सोलहों के नाम से सोलह अध्ययन है। भगवन्! इन सोलह अध्ययनों में से

प्रथम अध्ययन में क्या अर्थ है ? कृपया फर्मावे ।

मूलः—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे, गुणसीलए चेइए, सेणिए राया, तत्थ णं मंकाई णामं गाहावई परिवसइ अड्ढे जाव अपरिभूए । तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आदिकरे गुणसीलए जाव विहरइ, परिसा निग्गया । तए णं से मंकाई गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे जहा पन्नतीए गंगदत्ते तहेव, इमोवि जेट्ठ-पुत्तं कुडुंबे ठवेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीए सीयाए णिक्खंते जाव अणगारे जाए ईरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी । तए णं से मंकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस्स अंगाइं अहिज्जइ, सेसं जहा खंदगस्स गुण-रयणं तवोकम्मं, सोलसवासाइं परियाओ, तहेव विपुले सिद्धे । दोच्चस्स उक्खेवओ किंकमे वि एवं चेव जाव विपुले सिद्धे ।

भावार्थः—इस प्रकार हे जम्बू ! भगवान् महावीर के समय मे, राजगृह नामक एक नगर था । उसके ईशान

कोण की ओर गुणशील नामक एक अत्यन्त सुन्दर बाग था। उन दिनों उस नगरी में, श्रेणिक–बिम्बिसार नामक राजा वहाँ शासन करता था। वहाँ मङ्काई नामक गाथापति रहता था वह बड़ा सम्पत्तिशाली तथा निडर था। उसी समय मे धर्म के प्रचारक, श्रमण भगवान् महावीर विचरते हुए राजगृह के 'गुणशील' नामक बाग मे एक दिन पधारे। प्रभु के पदार्पण का शुभ सन्देश पाते ही, उनके दर्शनार्थ जनता उमड पडी। मङ्काई गाथापति को यह खबर हुई। जिस प्रकार भगवतीजी सूत्र में गङ्गदत्तजी का उल्लेख है, उसी प्रकार ये भी प्रभु के चरण-वन्दन की चाह मे अपने घर से निकले। प्रभु का प्रवचन श्रवण कर उनके हृदय मे वैराग्य बरसाती नदी की भाँति उमड़ आया। बड़े पुत्र को गृह-कार्य का समस्त भार सौपकर, बड़े समारोह के साथ उन्होने दीक्षा ग्रहण की। पाँच समिति तथा तीन गुप्त सहित नववाड़ युक्त ब्रह्मचारी हुए। तत्पश्चात्, उन मङ्काई मुनि ने भगवान् महावीर के अनुयायी स्थविर मुनियों से, सामायिक से लेकर ग्यारह अङ्गों तक पूरा-पूरा ज्ञानाध्ययन किया। इनका अवशेष वर्णन खन्धक मुनि की भाँति ही समझना चाहिए। अर्थात् इन्होने भी गुणरत्न आदि तपस्याएँ की। सोलह वर्ष पर्यन्त चारित्र-पालन कर, अन्तिम समय मे, अनशन व्रत करके वे विपुल गिरि पर मोक्ष मे पहुँचे। इसी प्रकार, राजगृह नगर के निवासी, दूसरे 'किङ्कम' नामक गाथापति ने भी दीक्षा अङ्गीकार कर मोक्ष प्राप्त किया।

मूलः—तच्चस उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे

गुणसिलए चेइए, सेणिए राया, चेल्लणादेवी। तत्थ णं रायगिहे णयरे अज्जुणए णामं मालागारे परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्सणं अज्जुणयस्स मालायारस्स बंधुमई णामं भारिया होत्था, सुकुमाला। तस्स णं अज्जुणयस्स मालायारस्स रायगिहस्स नयरस्स बहिया-एत्थणं महं एगे पुप्फारामे होत्था, कण्हे जाव निकुरंबभूए दसद्धवन्नकुसुमकुसुमिए पासाईए ४। तस्स णं पुप्फारामस्स अदूरसामंते तत्थ णं अज्जुणयस्स मालागारस्स अज्जय पज्जय-पिइपज्जयागए अणेगकुलपुरिसपरंपरागए मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था, पोराणे दिव्वे सच्चे जहा पुण्णभद्दे। तत्थ णं मोग्गरपाणिस्स पडिमा एगं महं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गहाय चिट्ठइ।

भावार्थ.—श्री सुधर्मा स्वामी से जम्बूस्वामी बोले—भगवन् ! छठे वर्ग के द्वितीयाध्ययन का वर्णन, जो आपने फर्माया, उसे मैने ध्यान-पूर्वक सुना। अब कृपा कर फर्मावे कि तृतीयाध्ययन का तात्पर्य क्या है ? हे जम्बू ! सुनो, भगवान् महावीर स्वामी के समय मे राजगृह नामक एक सुन्दर नगरी, गुणशील नामक उद्यान सहित सुशोभित थी। उस समय, उस नगरी मे, श्रेणिक राजा राज्य करता था। जिसके चेलणा नामक एक परम प्रिय पत्नी

थी। उसी राजगृह नगरी मे 'अर्जुन' नामक एक माली निवास करता था। यह माली बड़ा ही सुन्दर और सुडौल तथा सम्पत्तिशाली और निर्भय था। इसके बन्धुमती नामक एक महान् सुन्दर और सुकुमार धर्मपत्नी थी। राजगृह नगरी के बाहर, इस 'अर्जुन' माली की एक सुन्दर पुष्पवाटिका थी। जिसमें पाँचों वर्ण के पुष्प विकसित हो रहे थे। इस सुन्दर और मनोहर पुष्पवाटिका की अद्वितीय छटा, दर्शकों के चित्त को हरण करने वाली थी। फूलो के इस उपवन के अति निकट ही मे 'अर्जुन' के बड़े बूढे पितामह, आदि की वश परम्परा से चला आने-वाला पूर्णभद्र की भाँति प्राचीन, प्रधान एव सत्य एक यक्ष का 'यक्षायतन' था। उसमें 'मुद्गरपाणि' नामक एक यक्ष की मूर्ति (प्रतिमा) अपने हाथों में एक हजार पल का, भारी एक लोहमयी मुद्गर ग्रहण किये हुए प्रतिष्ठित थी।

मूलः—तए णं से अज्जुणए मालागारे बालप्पिभिइं चेव मोग्गरपाणिजक्खस्स भत्ते यावि होत्था, कल्लाकल्लिं पच्छियपडिगाइं गेण्हइ २ त्ता रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमइ २ त्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पुप्फुच्चयं करेइ २ त्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाइ, गहित्ता जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चयणं करेइ २ त्ता जानुपायपडिए पणामं करेइ २ त्ता

तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ ।

भावार्थ—तदुपरान्त वह 'अर्जुन' मालाकार बाल्यावस्था से हो, उस 'मुद्‌गरपाणि' यक्ष की सेवा भक्ति कर के उसका पूर्ण भक्त बना हुआ था। वह बॉस की टोकरी ले, नित्यप्रति राजगृह नगरी से निकलकर, उस पुष्प-वाटिका मे आता। वहाँ वह फूलो को चुनकर एकत्रित करता। फिर उन फूलो मे से अच्छे-अच्छे मनोरम फूलो को लेकर, उस 'मुद्‌गरपाणि' यक्ष के स्थान पर आता। और वहाँ उस यक्ष के सम्मुख फूलो का ढेरकर, अपने दोनों घुटनो को भूमि पर टिका नमस्कार करता। तत्पश्चात् राजगृह में गृह कार्यादि कर वह अपना निर्वाह करता था।

मूलः—तत्थ णं रायगिहे णयरे ललिया नामं गोट्ठी परिवसइ, अड्ढा जाव अपरिभूया जंकयसुकया यावि होत्था। तए णं रायगिहे नगरे अण्णया कयाइ पमोए घुट्ठे यावि होत्था। तए णं से अज्जुणए मालागारे कल्लं पभूयतराएहिं पुप्फेहिं कज्जमितिकट्टु पच्चूसकालसमयंसि बंधुमतीए भारियाए सद्धिं पच्छियपिडयाइं गेण्हइ २ त्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ २ त्ता रायगिहं नगरं मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ २ त्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ ।

भावार्थ.—उसी राजगृह में एक उद्दण्ड मित्र-मण्डली रहती थी । जो 'ललिता' नाम से प्रसिद्ध थी । उन उद्दण्ड मित्रजनो के पास सम्पत्ति भी पर्याप्त थी । और वे बिलकुल निर्भय थे । वे जो भी भला या बुरा कोई भी कार्य करते, उसको जनता अच्छा ही समझती थी । एक दिन उसी राजगृह में एक होने वाले महोत्सव की घोषणा हुई । तब अर्जुन माली ने सोचा, कि कल उत्सव के कारण फूलों की बिक्री भी विशेष होगी । इसी उद्देश्य से प्रेरित हो, प्रात.काल के होते ही वह, फूल रखने की टोकरियाँ आदि लेकर, अपनी स्त्री 'बन्धुमती' सहित राजगृह के मध्य मे, सार्वजनिक मार्गो से होता हुआ, अपनी पुष्प-वाटिका की तरफ चल दिया । वहाँ आकर वे दोनो दम्पती फूलों को चुन-चुन कर एकत्रित करने लगे ।

मूलः—तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए छ गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागया अभिरममाणा चिट्ठंति। तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ २ त्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ । तए णं ते छ गोठिल्ला पुरिसा अज्जुणयं मालागारं बंधुमईए भारियाए सद्धिं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अन्नमन्नं एवं वयासी—एस णं

देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं इहं हव्वमागच्छइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं अज्जुणयं मालागारं अवओडयं बंधणयं करेत्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणाणं विहरित्तए त्तिकट्टु एयमट्ठं अन्नमन्नस्स पडिसुणेंति पडिसुणित्ता कवाडंतरेसु निलुक्कंति निच्चला निप्फंदा तुसिणीया पच्छण्णा चिट्ठंति ।

भावार्थः—तत्पश्चात्, उस 'ललिता' नामक उद्दण्ड टोली के छः गोष्ठिक-मित्र-जन, उस मुद्गरपाणि यक्ष के स्थान की ओर आकर, क्रीडा करने लगे । उधर वह अर्जुन माली भी अपनी स्त्री के साथ फूलों को इकट्ठा कर और उनमे से कुछ अच्छे-अच्छे फूलों को लेकर उस यक्ष के स्थान की ओर आ रहे थे । इतने ही मे उन छहो उद्दण्ड मित्रों ने अर्जुन माली को सपत्नीक आते हुए देखा । वे परस्पर बोले—मित्रो ! यह ठीक है । देखो, वह अर्जुन माली भी अपनी स्त्री सहित यहाँ आ रहा है । हम सब उस अर्जुन माली को, औंधी मुश्कियों से बल-पूर्वक बाँधकर लुढका दे । और फिर उसकी स्त्री बन्धुमती के साथ, खूब अच्छी तरह से भोग विलास करे । ऐसा परस्पर सलाह-मशविरा कर, वे छहों मित्र-जन किवाडों के पीछे हिलना—डुलना बन्दकर चुपचाप छिपकर खडे हो गये ।

मूलः—तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं जेणेव मोग्गरपाणि-जक्खायणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आलोए पणामं करेइ २ त्ता महरिहं पुप्फुच्चणं करेइ २ त्ता जानुपायपडिए पणामं करेइ। तए णं ते छ गोठिल्ला पुरिसा दवदवस्स कवाडंतरेहिंतो णिग्गच्छंति, णिगच्छित्ता अज्जुणयं मालागारं गेण्हंति गेण्हित्ता अवओडगबंधणं करेंति करित्ता बंधुमतीए मालागारीए सद्धिं विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति। तए णं तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमज्झत्थिए ४ समुप्पन्ने एवं खलु अहं बालप्पभितिं चेव मोग्गरपाणिस्स भगवओ कल्लाकल्लिं जाव विंत्तिं कप्पेमाणे विहरामि, तं जइ णं मोग्गरपाणिजक्खे इह संनिहिते होंते सेणं किं ममं एयारूवं आवइं पावेज्जमाणं पासंते? तं नत्थि णं मोग्गरपाणि जक्खे इह संनिहिते, सुव्वत्तं तं एस कट्ठे।

भावार्थः—तत्पश्चात्, वह अर्जुन माली अपनी स्त्री सहित मुद्गरपाणि यक्ष के स्थान पर आया। और, यक्ष की प्रतिमा को देखते ही उसने उसे नमस्कार किया। फिर उस यक्ष के सम्मुख फूलों का ढेरकर, भूमि पर घुटने टिका दोनों ने प्रणाम किया। इतने ही में उन छहों उद्दण्ड मित्रों ने किवाड़ों के पीछे से निकल कर, एका-

एक अर्जुन माली को धर पकड़ा। और उसे उलटे हाथों (मुसकियाँ) दे बाँधा। फिर उसकी स्त्री बन्धुमती मालिन के साथ उन आततायियो ने बलात्कार किया। इस घटना को अपनी आँखों देख, अर्जुन माली को यह विचार उत्पन्न हुआ कि—अहो ! मै बाल्यावस्था से ही इस मुद्गरपाणि यक्ष की नित्यप्रति सेवा करता आ रहा हूँ। यदि वास्तव मे मुद्गरपाणि यक्ष इस प्रतिमा में या इसके निकट होता तो क्या वह मुझे इस प्रकार आपत्ति मे फँसा हुआ कभी देखता रहता ? नही, यह कभी नही हो सकता, इसलिए मुद्गरपाणि यक्ष यहाँ है, ऐसा मालूम नही होता। यह जो उसकी प्रतिमा है यह तो केवल काष्ठ-मात्र ही है।

मूणः—तए णं से मोग्गरपाणिजक्खे अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमेयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणेत्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरयं अणुपविसइ २ त्ता तडतडस्स बंधाइं छिंदइ, तं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गेण्हइ २त्ता इत्थिसत्तमे पुरिसे घाएइ। तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अणाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नयरस्स परिपेरंतेणं कल्लाकल्लिं छ इत्थिसत्तमे पुरिसे घाएमाणे विहरइ।

भावार्थ—तत्पश्चात्, अर्जुन माली के इन विचारों को जानकर, वह मुद्गरपाणि यक्ष अर्जुन माली के शरीर में प्रविष्ट हो गया। उस यक्ष की शक्ति के प्रभाव से अर्जुन ने अपने बँधे हुए बन्धनों को तडाक से तोड डाला और

उस हजार पल के भारी लोहे के मुद्गर को उसने हाथ मे उठा लिया। फिर क्या था, उठाया उसने उस मुद्गर को और लगा करने संहार उन छहों उद्दण्ड मित्रजनों एवं उस स्त्री का ! यों उन सातों ही को बात की बात ही में उसने सदा के लिए धराशायी कर दिया। तदनन्तर, वह अर्जुन माली उस यक्ष के अधीन हो, राजगृह नगरी के चहुँ ओर भ्रमण करता हुआ नित-नये छः मनुष्य और एक स्त्री, यों सात व्यक्तियो को, मारता फिरता।[1]

मूलः—तए णं रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव महापहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ ४-एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहे णयरे बहिया छ इत्थि सत्तमे पुरिसे घाएमाणे विहरइ। तए णं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे जाव घाएमाणे जाव विहरइ तं माणं तुब्भे केई तणस्स वा कट्ठस्स वा पाणियस्स वा पुप्फफलाणं वा अट्ठाए सइ निग्गच्छउ माणं तस्स सरीरस्स वावत्ती भविस्सइ त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि घोसणयं घोसेह, घोसित्ता खिप्पामेव ममेयं पच्चपि-

[1] पाँच महीने और तेरह दिनो मे ११४१ नर-नारियों की हत्या उसने की। जिसमे १०७८ मनुष्य और १६३ स्त्रियाँ थी।

णह । तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति ।

भावार्थ.–तब तो प्रतिदिन राजगृह नगरी के समस्त छोटे बड़े मार्गो पर जनता इकट्ठी होकर, परस्पर इस घटना की बडी जोरो से चर्चा करने लगी। वे एक दूसरे को सम्बोधित कर कहने लगे, कि नगरी के बाहर अर्जुन माली के शरीर में मुद्गरपाणि यक्ष ने प्रवेश कर लिया है। जिससे एक स्त्री और छ मनुष्यों को, नित्य प्रति वह मार डालता है। यह बात राजा श्रेणिक के कानो पर भी किसी दिन पहुँची। राजा ने राजकीय विश्वास-पात्र मनुष्य को बुलवाकर कहा, कि–"शहर भर मे जाकर यह घोपणा कर दो, कि "शहर के वाहर अर्जुन माली यक्षाधीन होकर एक स्त्री और छ मनुष्य यो सात व्यक्तियो को सदैव मार रहा है। इसलिए कोई भी मनुष्य शहर के बाहर घास, लकडी, पानी, फल और फूल आदि लेने के लिए न जाया करे। क्योकि, इन वस्तुओ को लेने के लिए जाते समय उस यक्ष के समीप पहुँचने पर, कही तुम्हारे शरीर पर कोई आपत्ति खडी न हो जाय। अतएव शहर के बाहर न जाने पर हीं प्रजाजनो मे अमन-चैन बना रहेगा। ऐसी मेरी भावना है।" इस प्रकार की घोपणा करके शीघ्र ही पुन' आकर मुझे सूचित करो। तत्पश्चात्, उस राजकीय पुरुष ने राजा के आदेशानुसार शहर-भर में घोषणा करके वापिस राजा को सूचना कर दी।

मूलः–तत्थ णं रायगिहे णयरे सुदंसणे णामं सेट्ठी परिवसइ, अड्ढे। तए णं से सुदं-

सणे समणावासए यावि होत्था। अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ। तेणं कालेण तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव समोसढे विहरइ। तए णं रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव महापहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ जाव किमंग पुण विपुलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तए णं तस्स सुदंसणस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म अयं अज्झत्थिए जाव समुप्पन्ने-एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ, तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि, एवं संपेहेइ २ त्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयल परिग्गहियं जाव एवं वयासी—एवं खलु अम्मताओ ! समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ, तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि जाव पज्जुवासामि।

भावार्थः—उस समय राजगृह नगरी में एक बड़े सम्पत्ति शाली 'सुदर्शन' नामक सेठ रहते थे। ये श्रमणोपासक श्रावक थे। इन्हे जड और चैतन्य का भला बोध था। ये पर्याप्त मात्रा में, धर्म-ध्यान करते हुए अपने जीवन को उन्नति पथ पर ले जा रहे थे। उमी समय मे, श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी एक समय धर्मोपदेश करते हुए, उसी नगरी के बाहर उद्यान में आ विराजे। स्वामी के पदार्पण की खुश खबर पाते ही छोटे-

बडे सभी बाजारो मे लोग एक दूसरे से कह रहे थे, कि जब भगवान् के दर्शन से ही अपूर्व लाभ होता है, तो फिर उनकी पीयूष-वर्षी पवित्र वाणी का रसास्वादन करने मे तो अवश्य ही अवर्णनीय आनन्द होता है। सुदर्शन सेठ ने भी प्रभु-आगमन की खबर पाते ही विचार किया, कि—अहो! सद्भाग्य से भगवान् ने इस क्षेत्र को पावन किया है। मै भी जाऊँ। उन्हे वन्दना करूँ। और यो, अपने जन्मजन्मान्तरो के पाप-तापों का समूल नाश करूँ। एसे शुभ विचार करके, माता-पिता के पास वे आये और अपने दोनों हाथों को जोडकर वे बोलेः—परम पूजनीय माता-पिताओ! भगवान् महावीर यहाँ पधारे हुए है। अत उन्हे मै वन्दना करने के, तथा उनकी सेवा करने के लिए जाऊँ, ऐसी मेरी इच्छा है।

मूलः—तए णं तं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो एवं वयासी—एवं खलु पुत्ता! अज्जुणे मालागारे जाव घाएमाणे विहरइ, तं मा णं तुमं पुत्ता! समणं भगवं महावीरं वंदए णिगच्छाहि, मा णं तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ, तुमण्णं इह गए चेव समणं भगवं महावीरं वंदाहि णमंसाहि। तए णं से सुदंसणे सेट्ठी अम्मापियरं एवं—वयासी किण्णं अहं अम्मयाओ! समणं भगवं महावीरं इहमागयं, इह पत्तं, इह समोसढं, इह गए चेव वंदिस्सामि नमंस्सामि? तं गच्छामि णं अहं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे समणे भगवं

महावीरं वंदामि जाव पज्जुवासामि ।

भावार्थ—तत्पश्चात् सुदर्शन सेठ के माता-पिता ने कहा—हे पुत्र ! अर्जुन माली, सात व्यक्तियों को नित्य प्रति मार डालता है । इसलिए तुम भगवान् को नमस्कार करने के लिए मत जाओ । न जाने, वहाँ जाने पर कही कोई व्यर्थ ही की दुर्घटना तुम्हारे शरीर पर घटित हो जाय । अतएव तुम यही से उन भगवान् को नमस्कार कर सकते हो । वे सर्वज्ञ है । यही से की हुई तुम्हारी भक्ति को अवश्यमेव स्वीकार करेगे । तब वह सुदर्शन सेठ अपने माता-पिता से बोले—हे पूज्य माता और पिता ! जब भगवान् महावीर यहाँ पधार गये; अपनी वस्ती मे जब वे आ बिराजे; उपदेश देने को उपस्थित जब वे हो गये, तो फिर मै कैसे उन्हे यही से वन्दना कर लूँ ? क्या, ऐसा करने से मैं कृत-कार्य कभी हो सकता हूँ । नही, नही, कभी नही । अतः हे माता और मेरे पूजनीय पिता ! अगर आपकी आज्ञा प्राप्त हो जावे, तो मै भी सर्वज्ञ भगवान् की सेवा के लिए, उनकी चरण शरण मे जाकर, अपने भवजनित तापो का कुछ न कुछ अंश मे शमन कर सकूँ ।

मूलः—तए णं तं सुदंसणसेट्ठिं अम्मापियरो जाहे नो संचायेंति बहूहिं आघवणाहिं ४ जाव परूवेत्तए तए णं से अम्मापियरो ताहे अकामया चेव सुदंसणं सेट्ठिं एवं वयासी-अहासुहं देवाणुप्पिया ! तए णं से सुदंसणे अम्मापिईहिं अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए सुद्धप्पावे-

१०२

साइं जाव सरीरे सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ २ त्ता पायविहारचारेणं रायगिहं नगरं मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ २ त्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरसामंते णं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थए गमणाए। तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समाणोवासयं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं २ पासइ २ त्ता आसुरुत्ते तं पलसहस्सणिप्फन्नं अयोमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे २ जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थए गमणाए।

भावार्थ—सुदर्शन सेठ की नाना प्रकार की दलीलो से परास्त हुए, उनके माता-पिता, उन्हे अपने सत्य सङ्कल्प से एक तिल-भर भी इधर-उधर न डिगा सके। और जब वे उन्हे रोकने में असमर्थ हो गये, तब वे अपने पुत्र से बोले—यदि हमारा कहना नही मानना, यही तुमने निश्चय किया हो, तो तुम्हे जिसमें भी सुख ज्ञात हो, वैसा करो। यो, माता-पिता की आज्ञा हो जाने पर, सेठ से स्नान किया। और शुद्ध वस्त्रों से सज कर वे घर से निकल पडे। राजगृह के मध्य रास्तों मे पैदल ही पैदल, मुद्गरपाणि यक्ष के स्थान के निकट होते हुए, गुणशील नामक बाग की तरफ से, जहाँ भगवान् महावीर स्वामी विराजते थे, उधर आ रहे थे। तब वह मुद्गरपाणि यक्ष, सुदर्शन श्रमणोपासक को कुछ समीप ही मे आते देख, क्रोधित हुआ। और, अपने उस एक हजार

पल के भारी लोहे के मुद्गर को फिराता तथा उछालता हुआ, उन सुदर्शन सेठ के निकट आ पहुँचा।

मूलः—तए णं से सुदंसणे समणोवासए मोग्गरपाणिं जक्खं एज्जमाणं पासइ २ त्ता अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभंते वत्थएणं भूमिं पमज्जइ २ त्ता करयल एवं वयासी—नमोत्थुणं अरहंताणं जाव संपत्ताणं, नमोत्थुणं समणस्स जाव संपाउ-कामस्स, पुव्विं च णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलए मुसावाए, थूलए अदिन्नादाणे, सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छापरिमाणे कए जावज्जीवाए, तं इयाणिं पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए सव्वं मुसावायं सव्वं अदत्तादाणं सव्वं मेहुणं सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए सव्वं कोहं जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पेइ पारेत्तए, अह णो एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि तओ मे तहा पच्चक्खाए

चेव त्ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ ।

भावार्थ—उसके बाद भी वे सुदर्शन सेठ, अपनी ओर आते हुए उस यक्ष को देखकर, भय, त्रास, उद्वेग और क्षोभ से रहित बने रहे । तथा, उसे देखकर जरा भी चलायमान वे नही हुए । निर्भय होकर सुदर्शन सेठ ने भूमि को वस्त्र से परिमार्जित की और हाथ जोडकर बोले—नमस्कार हो, उन अर्हन्तो को, जो मोक्ष मे पधार गये है । एवं नमस्कार हो उन वर्तमान अर्हन्तो को, जो मोक्ष में पधारने वाले है । पहले मैंने भगवान् महावोर के समीप, स्थूल प्राणातिपात जीवन पर्यन्त के लिए पचक्खा था । इसी प्रकार स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान, और स्व-स्त्री सन्तोष का अणुव्रत धारण किया था । सम्पत्ति की भी जीवन पर्यन्त के लिए यथेष्ठ मर्यादा की थी । अब इस समय उन्ही प्रभु की साक्षी से सर्व प्राणातिपात का त्याग जीवन पर्यन्त के लिए करता हूँ । इसी प्रकार मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह का जीवन भर के लिए सर्वथा प्रकार से त्याग करता हूँ । और, क्रोध मान माया और लोभ आदि यावत् मिथ्यात्वदर्शनशल्य तक अठारह ही पापों को जीवन पर्यन्त के लिए त्यागता हूँ । इसके अतिरिक्त, सर्वथा प्रकार से आहार-पानी खाद्य, स्वाद्य, चारों ही प्रकार के आहार का भी जीवन पर्यन्त के लिए त्याग करता हूँ । यदि, इस उपसर्ग से बच जाऊँ, तो मुझे ये त्याग सर्वथा प्रकार से नही है । अर्थात् मैं भोजन वगैरह ले सकूँगा । और, यदि इस उपसर्ग से मै मुक्त न हो सकूँ तो जिस प्रकार मैंने त्याग किये है; उसी तरह से मेरे त्याग है । इस प्रकार, सागारी अनशन व्रत को धारण कर के सेठ

सुदर्शन, प्रभु–भक्ति मे तल्लीन हो गये ।

मूलः–तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे तं पलसाहस्सणिप्फन्नं अयोमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे २ जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता नो चेव णं संचाएति सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए तएणं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं सव्वओ समंताओ परिघोलेमाणे २ जाहे नो चेव णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए, ताहे सुदंसणस्स समणोवासयस्स पुरओ सपक्खिं सपडिदिसिं ठिच्चा सुदंसणं समणोवासयं अणिमिसाए दिट्ठीए सुचिरं निरिक्खइ २ त्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरं विप्प जहाइ २ त्ता तं पलसहस्सनिप्फन्नं अयोमयं मोग्गरं गहाय जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ।

भावार्थ–तत्पश्चात्, वह मुद्गरपाणि यक्ष अपने उस एक हजार पल के भारी लोहे के मुद्गर को उछालता तथा फेंकता हुआ, उन सुदर्शन श्रावक के ऊपर अचानक टूट पडा । किन्तु सुदर्शन श्रावक का तेज देख कर उनको कष्ट पहुँचाने में वह समर्थ न हो पाया । तब तो वह मुद्गरपाणि यक्ष, सुदर्शन श्रावक के चहु और

घूमा। फिर भी उनके तेज के सामने, यक्ष का कुछ भी बल नही चला। तब वह यक्ष उन सुदर्शन सेठ के सम्मुख बराबर खड़ा हो कर, उनको अनिमेष दृष्टि से बहुत देर तक देखता रहा। फिर वह यक्ष अर्जुन माली के शरीर से निकल गया और उस मुद्गर को लेकर जिस दिशा से आया था, उसी ओर वह चला गया।

मूलः—तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं विप्पजहे समाणे धसत्ति धरणितलंसि सव्वंगेहिं निवडिए। तए णं से सुदंसणे समणोवासए निरुवसग्गमितिकट्टु पडिमं पारेइ। तए णं से अज्जुणए मालागारे तओ मुहुत्तंतरेणं आसत्थे समाणे उट्ठेइ २ त्ता सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी—तुब्भेणं देवाणुप्पिया! के? कहिं वा संपत्थिया? तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुयणं मालागारं एवं वयासा—एवं खलु देवाणुप्पिया! अहं सुदंसणे णामं समणोवासए अभिगयजीवाजीवे गुणसिलए चेइए समणं भगवं महावीरं वंदए संपत्थिए।

भावार्थ.—तदनन्तर, वह 'अर्जुन माली,' उस यक्ष के पञ्जे से विमुक्त होते ही धमाक से भूमि पर जा गिरा। उधर, उन सुदर्शन श्रावक ने अपने को उपसर्ग रहित जान कर अपनी प्रतिज्ञा को पाला। कुछ समय के पश्चात्,

वह 'अर्जुन माली' स्वस्थ हो कर खडा हुआ। और, सुदर्शन से बोला—'हे देवानुप्रिय! तुम कौन हो? और कहाँ जाते हो? सुदर्शन ने कहा—'मै सुदर्शन' नामक श्रमणोपासक एक व्यक्ति हूँ। मुझे जीव-अजीव का भी बोध है। गुणशील उद्यान में भगवान् महावीर का सुभागमन हुआ है उन्ही को नमस्कार करने के लिए मैं वहाँ जा रहा हूँ।

मूलः—तए णं से अज्जुणए मालागारे सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी-तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! अहमवि तुमए सद्धिं समणं भगवं महावीरं वंदेत्तए जाव पज्जुवासेत्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया! तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं समणं भगवं महावीरे तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासइ। तए णं समणं भगवं महावीरं सुदंसणस्स समणोवासयस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य धम्मकहा। सुदंसणे पडिगए।

भावार्थः—उसके बाद, उस 'अर्जुन माली' ने सुदर्शन सेठ को इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! मैं भी

तुम्हारे साथ भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना तथा उनकी सेवा–भक्ति के लिए चलना चाहता हूँ।' उत्तर में सुदर्शन सेठ ने कहा–'ज्यों तुम्हे सुख हो, त्यो करो। ऐसा कहकर, वह सुदर्शन सेठ, 'अर्जुन माली' को साथ ले, जिस ओर गुणशील बाग मे भगवान् महावीर बिराजते थे वहाँ आया। दोनो ने भगवान् को वन्दना की। और अपने जीवन तथा जन्म को कृत-कृत्य किया। भगवान् ने भी उन दोनो को धर्म-कथा सुनाई। सुदर्शन सेठ धर्मोपदेश श्रवण करने के पश्चात् शहर मे लौट आये।

मूलः–तए णं से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ तुट्ठ एवं वयासी-सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं जाव अब्भुट्ठेमि। अहासुहं देवाणुप्पिया! तए णं से अज्जुणए मालागारे उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं अवक्कमइ २ त्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ २ त्ता जाव अणगारे जाए जाव विहरइ। तए णं से अज्जुणए अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे जाव पव्वइए तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं उग्गिण्हइ–कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु

अयमेयारूवं अभिग्गहं ओगेण्हइ २ त्ता जावज्जीवाए जाव विहरइ ।

भावार्थः—परन्तु 'अर्जुन माली' ने जो भगवान् महावीर का उपदेश सुना था, उसका बार-बार उसने मनन किया । तब बड़ा ही प्रसन्न होता हुआ वह भगवान् से बोला—भगवन् । निर्ग्रन्थो के प्रवचन मैने सुने अब उन पर विश्वास लाकर उनके अनुसार व्यवहार करने को भी मै तैयार हूँ । भगवान् ने फर्माया—जैसा भी तुम्हें रुचिकर हो, करो । यह सुनते ही 'अर्जुन माली' ने ईशान कोण में जाकर, स्वयमेव पञ्चमुष्टि लोचन किया । और, साधु के महाव्रत को धारण कर वह साधु बन गया । उसी दिन से, 'अर्जुन' अणगार ने, भगवान् को वन्दना करके, जीवन पर्यन्त अन्तर-रहित, बेले-बेले पारणा करने का अभिग्रह धारण कर लिया । और, यो वे बेले-बेले पारणा करते हुए विचरण करने लगे ।

मूलः—तए णं से अज्जुणए अणगारे छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमपोरिसीए सज्झायं करेइ, जहा गोयमसामी जाव अडइ । तए णं तं अज्जुणयं अणगारं रायगिहे णयरे उच्च जाव अडमाणं बहवे इत्थीओ य पुरिसा य डहरा य महल्ला य जुवाणा य एवं वयासी—इमे णं मे पियामारए, भायामारए, भगिणीमारए, भज्जमारए, पुत्तमारए, धूयामारए, सुण्हा-

मारए, इमेण मे अण्णयरे सयणसंबंधिपरियणे मारिए त्ति कट्टु अप्पेगइया अक्कोसंति, अप्पेगइया हीलंति निंदंति खिसंति गरिहंति तज्जेंति तालेंति ।

भावार्थ—तत्पश्चात्, उन 'अर्जुन' मुनि ने बेले के पारणे के दिन, प्रथम प्रहर मे, स्वाध्याय किया । द्वितीय प्रहर मे ध्यान किया । और तीसरे प्रहर मे, गौतम स्वामी की भाँति गौचरी के लिए शहर में इधर-उधर घूमते रहते । उन अर्जुन मुनि को भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए, किसी दिन, राजगृह मे अनेको स्त्री-पुरुषा तथा बालको और युवानो ने देखा । उन्हे देखते ही, अनेक प्रकार का वैर-बदला चुकाने की भावना ने उन लोगो के हृदय मे जोर पकडा । उनमे से कोई कहने लगा, कि यह वही है, जिसने मेरे पिता, माता, बहिन, स्त्री, पुत्र, बेटी और पुत्र-वधु आदि का अकारण ही सहार कर दिया था । इतना ही नही, अनेको स्वजन-सम्बन्धियो को भी इसने असमय मे ही परलोक को पठा दिया है । ऐसा कहकर कोई उन पर आक्रोश करने लगा, कोई हीलना और निन्दा करने लगा, कोई खिसियाने लगा, कोई गर्हा करने लगा, कोई तर्जना और ताड़ना करने लगा ।

मूलः—तए णं से अज्जुणए अणगारे तेहिं बहूहिं इत्थीहि य पुरिसेहि य डहरेहि य महल्लेहि य जुवाणएहि य आओसेज्जमाणे जाव तालेज्जमाणे तेसिं मणसा वि अपउस्समाणे सम्मं

सहइ सम्मं खमइ तितिक्खइ अहियासेइ, सम्मं सहमाणे खममाणे तितिक्खमाणे अहियासमाणे रायगिहे णयरे उच्चनीयमज्झिमकुलाइं अडमाणे जइ भत्तं लभइ तो पाणं ण लभइ, जइ पाणं तो भत्तं न लभइ, तए णं से अज्जुणए अणगारे अदीणे अविमणे अकलुसे अणाइले अविसाई अपरितंतजोगी अडइ २ त्ता रायगिहाओ नयराओ पडिनिक्खमई २ त्ता जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे जहा गोयमसामी जाव पडिदंसेइ २ त्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए अमुच्छिए बिलमिवपण्णगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ ।

भावार्थः—इस प्रकार स्त्रियो, पुरुषों, छोटों, बडों सभी ने उनकी ताडना-तर्जना की। प्राय: सभी ने अपना-अपना वैर-बदला, किसी-न-किसी भाँति चुका लेने की पूरी-पूरी चेष्टा उस समय की । शरीर वही होने पर भी, आज उनकी भावनाओं में एकदम अन्तर था । थोड़े में, यूँ कहा जा सकता है, कि यदि पहले उनका सम्बन्ध जगत् के साथ तिरसठ का रहा होगा, तो आज वही छत्तीस हो गया था । अत: जो भी कुछ परिषह उन्हें उस समय पहुँचाया गया, हँसते-हँसते उन ने सब कुछ सह लिया। ऐसी परिस्थिति में, आहार मिलता तो पानी नही,

और पानी मिलता तो आहार नही। इस प्रकार समय पर रूखा-सूखा जैसा भी भोजन मिल जाता, उसे ही अदीन, अविमना, अकलुष, अक्षोभित, अविषादी, तनतनाटे आदि विक्षेप भावों से निरे असङ्ग रह कर लेते हुए, राजगृह से निकल वे गुण-शील बाग मे आते और, वहाँ वे लाया हुआ भोजन भगवान् महावीर को श्रद्धा समेत दिखा, उनकी आज्ञा प्राप्त होने पर, गृद्धिपन से रहित जिस प्रकार साँस बिल मे सीधा घुसता है ठीक उसी प्रकार राग-द्वेष रहित हो, उस भोजन का सेवन कर अपना सयम निर्वाह करते।

मूलः—तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ रायगिहाओ णयराओ पडिनिक्खमइ २ त्ता बहिं जणवयविहारं विहरइ। तए णं से अज्जुणए अणगारे तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपुण्णे छम्मासे सामण्णपरियागं पाउणइ, अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ २ त्ता जस्सट्ठाए कीरई जाव सिद्धे।

भावार्थः—फिर, किसी समय जब श्रमण भगवान् महावीर, राजगृह से विहार कर, जनपद देश मे विचरण कर धर्मोपदेश कर रहे थे, उसी अवधि में उन महानुभावी अर्जुन मुनि ने, प्रयत्न-पूर्वक ग्रहण किये हुए बेले-बेले के

पारणे के उस प्रधान तप से, अपनी आत्मा को निजानन्द में रमाते हुए, पूरे-पूरे छः महीने का चारित्र पाला। तथा अपने अन्तिम समय के पूरे पन्द्रह दिनो का सन्थारा कर, इन छः महीनो ही में, अर्जुन मुनि ने अपने सम्पूर्ण घनघाती कर्मो को क्षय कर डाला और मोक्ष प्राप्त किया। अर्थात् वे सिद्ध हो गये।

मूलः—उक्खेवओ चउत्थस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समए णं रायगिहे णयरे, गुणसिलए चेइए, तत्थ णं सेणिए राया, कासवे णामं गाहावइ परिवसइ जहा मकाई, सोलस वासा परियाओ, विपुले सिद्धे। एवं खेमए वि गाहावई, णवरं कागंदी णयरी, सोलस वासा परियाओ, विपुले पव्वए सिद्धे। एवं, धितिहरे वि गाहावई, कागंदीए णयरीए सोलस वासा परियाओ जाव विपुले सिद्धे। एवं केलासे वि गाहावई, णवरं सागेए णयरे, बारसवासाइं परियाओ, विपुले सिद्धे। एवं हरिचंदणे वि गाहावई, सागेए णयरे, बारसवासा परियाओ विपुले सिद्धे। एवं वारवत्तए वि गाहावई, णवरं रायगिहे णयरे. बारसवासा परियाओ विपुले सिद्धे। एवं सुदंसणेवि गाहावई, णवरं वाणीयगामे णयरे दूइपलासए चेइए, पंचवासा परियाओ, विपुले सिद्धे। एवं पुण्णभद्दे वि गाहावई वाणियगामे

णयरे पंचवासा परियाओ विपुले सिद्धे । एवं सुमणभद्दे वि गाहावई सावत्थीए णयरीए बहु-वासा परियाओ विपुले सिद्धे । एवं सुपइट्ठे वि गाहावई सावत्थीए णयरीए सत्तावीसं वासा परियाओ विपुले सिद्धे । एवं मेहे वि गाहावई रायगिहे णयरे बहूइं वासाइं परियाओ विपुले सिद्धे ।

भावार्थ.—जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से कहा—भगवन् छठे वर्ग के, तृतीय अध्ययन में, भगवान् महावीर ने, जो फर्माया था, वह आपके श्री मुख से मैने श्रवण किया । अब छठे वर्ग के, चौथे अध्ययन मे, भगवान् ने जो भी कुछ फर्माया हे उसे हृदयङ्गम करने के लिए मेरा मन बडा ही छटपटा रहा है । अतः उसी का विवेचन अब कर मेरा मनोरथ पूरा कीजिए ।

हे जम्बू ! सुनो । उस समय जो राजगृह नगरी थी, उसके पास गुणशील नामक एक बाग सुशोभित था । उस समय, वहाँ श्रेणिक नामक एक राजा राज करते थे । उन दिनो वहाँ काश्यप नामक एक गाथापति रहता था । जिस प्रकार मङ्काई नामक गाथापति ने दीक्षा धारण की, ठीक वैसे ही काश्यप गाथापति ने समय पर वैराग्य पा, दीक्षा धारण की । सोलह वर्ष का चारित्र-पालन उन्होने किया । और, अन्तिम समय मे, विपुलगिरि पर सन्थारा ले अपने सारे कर्मो को नष्ट किया । पश्चात् वे मोक्ष मे पधार गये । इसी तरह पाँचवे अध्ययन मे उल्लेख है, कि काकन्दी नगरी के निवासी, क्षेमक गाथापति ने भी दीक्षा लेकर सोलह वर्ष का चारित्र-पालन किया । तथा अन्तिम समय

में विपुलगिरि पर सन्थारा ले वे भी मुक्ति में गये। आगे छटे अध्ययन में उसी काकन्दी के निवासी, धृतिधर नामक गाथापति के सम्बन्ध मे भी ठीक ऐसा ही कहा गया है तब सातवे और आठवे अध्ययनों में यह उल्लेख पाया जाता है कि—साकेत नगर—निवासी कैलाश और हरिचन्दन नामक गाथापतियों ने समय पर भगवान् महावीर का उपदेश सुन दीक्षा को अङ्गीकार किया। बारह वर्षो तक चरित्र का पालन कर, अपने अन्तिम समय में उसी विपुलगिरि पर सन्थारा ले मोक्ष-धाम को सिधार गये। आगे नौवें अध्ययन में भी राजगृह के निवासी वारत्तक नामक गाथापति के सम्बन्ध में ठीक इसी प्रकार का वर्णन पाया जाता है। उसके दीक्षित होने, चारित्र-पालन करने तथा सन्थारा ले मोक्ष में जाने, आदि का वर्णन ठीक आठवे अध्ययन ही के समान है। इसी प्रकार दशवे और ग्यारवे अध्ययनो में उल्लेख है, कि दुतिपलास उद्यान से सुशोभित वाणिया गॉव के निवासी सुदर्शन और पूर्णभद्र गाथापतियों ने भी दीक्षा ले पांच वर्ष का चारित्र पालन किया। तथा अपने अन्तिम समय में उसी विपुल गिरि पर सन्थारा ले वे मोक्ष धाम को गये। आगे बारहवे तथा तेरहवे अध्ययनों में वर्णन किया गया है, कि श्रावस्ती नगरी के निवासी क्रमश: सुमन भद्र और सुप्रतिष्ठ नामक गाथापतियों ने दीक्षा धारण की। सुमन-भद्र मुनि ने अनेकों वर्षो तक चारित्र पाला। और सुप्रतिष्ठ मुनि ने सत्ताईस वर्ष तक चारित्र पाला। और तब ये दोनो भी अपने-अपने अन्तिम समय में, विपुलगिरि पर सन्थारा ले मुक्ति में गये। आगे के चौदहवें अध्ययन मे राजगृह के निवासी मेघ नामक गाथापति का उल्लेख है। उन्होंनें भी समय पाकर, दीक्षा धारण की। अनेकों वर्षो

तक वे भी चारित्र का पालन करते रहे। और, अन्तिम समय मे विपुलगिरि पर सन्थारा उन्होने लिया। तथा मुक्ति-धाम को गये। यो हे जम्बू! छठे वर्ग के चोदह अध्ययनो का थोडे मे, सार-रूप कथन यहाँ कह सुनाया।

मूलः—उक्खेओ पन्नरसस्स अज्झयणस्स एवं वयासी—एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरे नयरे. सिरीवणे उज्जाणे तत्थ णं पोलासपुरे नयरे विजये नाम राया होत्था। तस्स णं विजयस्स रन्नो सिरीनामं देवी होत्था, वण्णओ। तस्स णं विजयस्स रन्नो पुत्ते सिरीए देवीए अत्तए अइमुत्ते नामं कुमारे होत्था, सुकुमाले। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव सिरीवणे विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई जहा पण्णत्तीए जाव पोलासपुरे नयरे उच्च जाव अडइ।

भावार्थः—जम्बूस्वामी ने सुधर्मास्वामी से कहा—भगवन्! छठे वर्ग के चौदह अध्ययनों में, जो वर्णन किया गया है, उसका श्रवण तथा मनन मैने किया। अब अगले अध्ययन मे जो भी कुछ भगवान् ने श्रीमुख से वर्णन किया है, उसे सुनाने की कृपा करे। हे जम्बू! सुन! उसी काल मे एक पोलसपुर नामक नगर था। जो श्रीवन नामक एक परम मनोहर उद्यान से सुशोभित था। उन दिनो वहां विजय नामक राजा राजासीन थे। उसकी रानी का

नाम श्री देवी था । उन विजय राजा के पुत्र और श्री देवी का अङ्गज अइमुत्त-एवन्ता-नामक कुमार था । जो बडा ही सुकुमार तथा सुशील था । एक दिन भगवान् महावीर भव्य प्राणियों को धर्म का बोध करते–कराते हुए, उसी पोलासपुर नगर के बाहर 'श्रीवन' नामक बाग मे पधार गये । भगवान् की भव-रोग-नाशिनी आज्ञा को प्राप्त कर उनके सबसे बड़े शिष्य, इन्द्रभूति, जिस प्रकार भगवतीजी सूत्र में वर्णन है, वैसे ही यहाँ पोलासपुर में, धनी तथा निर्धनी सभी घरों मे भेदा-भेद के भावो का जरा विचार अपने हृदय में न रखते हुए भिक्षा के लिये जाते ।

मूलः—इमं च णं अइमुत्ते कुमारे ण्हाए जाव विभूसिए बहूहिं दारएहि य दारियाहि य डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ २ त्ता जेणेव इंदट्ठाणे तेणेव उवागए, तेहिं बहूहिं दारएहि य दारियाहि य डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे अभिरममाणे २ विहरइ । तए णं भगवं गोयमे पोलासपुरे नगरे उच्चनीयं जाव अडमाणे इंदट्ठाणस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे वीईवयइ । तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं पासइ २ त्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागए, उवागइ त्ता भगवं गोयमं एवं वयासी—के

णं भंते ! तुब्भे ? किं वा अडह ।

भावार्थ–एक दिन उसी समय अचानक अइमुत्त कुमार भी स्नान कर वस्त्रालङ्कारो से सुसज्जित बन, अनेक दारक-दारिका, डिम्भक-डिम्भिका, और कुमार एवं कुमारिकाओं के साथ, घर से निकल कर जहाँ इन्द्रस्थान अर्थात् खेलने या क्रीडा करने की जगह थी, उधर आ निकले । और उन सभी के साथ वे भी वहाँ खेलने लगे । भगवान् के सबसे बड़े शिष्य श्री इन्द्रभूति (गौतम स्वामी) जो पोलासपुर नगर मे सभी धनी निर्धनियो के घर मे भिक्षार्थ आये हुए थे, उस दिन उस क्रीड़ा-भूमि के निकट होकर प्रस्थान कर रहे थे । उन दिव्य तपोधारी एव तेजस्वी गौतम स्वामी को अइमुत्त कुमार ने अपने क्रीडा-स्थल के बिलकुल समीप ही से निकलते हुए देखा । खेल को परे रख, वह उनके पास आया और उसने उनका परिचय पूछने लगा । एवं उनके, यो इधर-उधर घर-घर फिरने का कारण जानना चाहा ।

मूलः–तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी–अम्हेणं देवाणुप्पिया ! समणा णिग्गंथा ईरियासमिया जाव बंभयारी उच्चनीय जाव अडामो । तएणं अतिमुत्ते कुमारे भगवं गोयमे एवं वयासी–एह णं भंते ! तुब्भे जा णं अहं तुब्भं भिक्खं दवावेमीति कट्टु

भगवं गोयमं अंगुलीए गेण्हइ २ त्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागये । तए णं सा सिरी-देवी भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ २ त्ता हट्ठतुट्ठ आसणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागया, भगवं गोयम तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता विउलेणं असणपाणखादिमसादिमेणं पडिलाभेइ जाव पडिविसज्जेइ ।

भावार्थः—इस पर गौतमस्वामी ने अइमुत्तकुमार को उत्तर में इस प्रकार कहा—हम पॉच महाव्रत, पॉच समिति आदि और नौ नियम-पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, श्रमण—निर्ग्रन्थ है । भिक्षार्थ इधर-उधर घरो में हम जा रहे है । स्वामीजी की इन बातों को श्रवण कर अइमुत्तकुमार बोला—भगवन् ! आप भिक्षा के लिए फिर रहे है । अतएव चलिए आपको मै भिक्षा दिलाता हूॅ । ऐसा कहकर कुमार ने स्वामीजी की अँगुलिये पकड़ ली । और, उन्हे अपने घर लाया । कुमार की माता श्रीदेवी ने श्रीगौतम स्वामी को अपने घर अतिथि के रूप में आये हुए देखकर, बड़ी प्रसन्नता प्रकट की तथा विधि-पूर्वक वन्दना कर, उच्च भावो के साथ; अति ही निर्मल अन्तःकरण से, असन, पान, खाद्य और स्वाद यह चारों ही प्रकार का आहार उन्हें बहराया ।

मूलः—तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—कहि णं भंते ! तुब्भे परिवसह ? तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम धम्मायरिए धम्मोवएसए भगवं महावीरे आइगरे जाव संपाउकामे इहेव पोलासपुरस्स नयरस्स बहिया सिरिवणे उज्जाणे अहापडिग्गहं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तत्थ णं अम्हे परिवसामो। तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—गच्छामि णं भंते ! अहं तुब्भेहिं सद्धिं समणं भगवं महावीरं पायवंदए। अहासुहं देवाणुप्पिया ! ।

भावार्थः—तत्पश्चात्, उन अइमुत्त कुमार ने गौतमस्वामी को यूँ निवेदन किया कि—भगवन् ! आप कहा निवास करते है ? उत्तर मे गौतम स्वामी ने कुमार से कहा—हे देवानुप्रिय ! धर्म का फिर से उत्थान करने वाले और मोक्षाभिलाषी, मेरे धर्माचार्य एवं धर्मोपदेशक भगवान् महावीर इसी पोलासपुर नगर के बाहर स्थित 'श्रीवन' नामक उद्यान मे, संयम और तपस्या से आराधना करते हुए आजकल विराजते है। वहाँ, मै भी उनकी सेवामे रह कर काल-यापन कर रहा हूँ। यह सुन कर कुमार बोला-भगवन् ! मै भी आपके साथ, उन परम प्रभु

के दर्शनार्थ आऊँ, तो क्या हानि है ? स्वामीजी ने फर्माया—कोई हानि नहीं । जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, निःशङ्क-भाव से तुम वैसा ही कर सकते हो ।

मूलः—तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवया गोयमेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता वंदइ जाव पज्जुवासइ । तए णं भगवं गोयमे जेणेव समणे भगवं महावीरं तेणेव उवागए जाव पडिदंसेइ २ त्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । तएणं समणे भगवं महावीरं अइमुत्तस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहा । तए णं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जं णवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव पव्वयामि । अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

भावार्थः—तब इन अइमुत्त कुमारने, गौतम स्वामी के साथ, भगवान् महावीर के पास, आकर उन्हें विधि-विधान के साथ वन्दना की । इतना ही कर के कुमार चुप न रहा । वह उनकी सेवा में भी संलग्न हुआ । इधर

गौतम स्वामी ने भी भगवान् के पास आ उन्हे आहार दिखाया । फिर भोजन ग्रहण कर लेने पर, संयम और तपस्या मे, अपनी आत्मा को सलग्न किया । उधर भगवान् महावीर अइमुत्त कुमार को धर्मोपदेश देने लगे । धर्मोपदेश श्रवण कर, कुमार का हृदय बॉसो उछल पडा । उसे हृदयङ्गम कर वह भगवान् से यूँ बोला—भगवन् ! मै माता-पिता से पूछ कर आऊँगा और आपसे दीक्षा ग्रहण करूँगा । भगवान् ने फर्माया—हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हे सुख प्राप्त हो, उस प्रकार करो ! परन्तु किसी भी शुभ काम में, किसी भी प्रकार का विलम्ब करना ठीक नही ।

मूलः—तए णं से अइमुत्ते कुमारे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागए जाव पव्वतित्तए अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—बाले सि ताव तुमं पुत्ता ! असंबुद्धे सि तुमं पुत्ता ! किं णं तुमं जाणासि धम्मं ? तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—एवं खलु अहं अम्मायाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न याणामि, जं चेव न याणामि तं चेव जाणामि । तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—कहं णं तुमं पुत्ता ! जं चेव जाणासि जाव तं चेव जाणासि ।

भावार्थ:—तदनन्तर, कुमार अइमुत्त अपने माता-पिता के पास आकर बोला—पूज्य माता-पिताजी ! मैंने आज प्रभु का साक्षात्कार किया और उन्होंने मुझे सदुपदेश दिया, जिससे मेरा हृदय संसार से विरक्त हो चुका है। कृपाकर, अब आप मुझे आज्ञा प्रदान करे। आप की आज्ञा प्राप्त होने पर मै दीक्षा ग्रहण करूंगा। कुमार की बात सुन कर माता-पिता बोले—पुत्र ! तुम अभी बालक हो, अतत्वज्ञ हो। धर्म के मर्म को तुम अभी क्या जानते हो ? इस पर कुमार बोला—मेरे परम पूज्य माताजी एवं पिता श्री, जिस को मैं जानता हूँ। उसी को मैं नही जानता। और जिसे मै नही जानता हूँ, उसी को मै जानता हूँ। कुमार की इस प्रकार की पेचीदा बातों को सुनकर माता-पिता चकित हो गये। वे सोचने लगे कि ऐसी छोटी अवस्था का कुमार, यह बोल क्या रहा है ! कुमार से माता-पिता बोले—पुत्र ! तुमने यह कौनसी बात कही ? हम तो इसमें कुछ भी समझ न पाये। बेटा ! अभी ! और, ऐसी ऐसी पेचीदा बाते ! ! !

मूलः—तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—जाणामि अहं अम्मताओ ! जहा जाएणं अवस्समरियव्वं न जाणामि अहं अम्मताओ ! काहे वा कहिं वा कहं वा केचिरेण वा ? न जाणामि अहं अम्मताओ ! केहिं कम्मायणेहिं जीवा नेरइय-तिरिक्ख-जोणि मणुस्सदेवेसु उववज्जंति, जाणामि णं अम्मताओ ! जहा सएहिं कम्मा-

याणेहिं जीवा नेरइय जाव उववज्जंति, एवं खलु अहं अम्मताओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न याणामि, जं चेव न याणामि तं चेव जाणामि, इच्छामि णं अम्मताओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए जाव पव्वइत्तए। तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाएति बहूहिं आघवणेहिं तं इच्छामो ते जाया ! एगादिवसमवि रायसिरिं पासेत्तए। तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापिउवयणमणुयत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ, अभिसेओ जहा महाबलस्स निक्खमणं जाव सामाइयमाइयाइं अहिज्जइ बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं गुणरयणं जाव विपुले सिद्धे।

भावार्थः—माता-पिता के पूछने पर, कुमार ने उन्हें यूँ कहा-माता-पिताओ ! मैं जानता हूँ, कि जो जन्मा है, वह एक-न-एक दिन अवश्य मरेगा, परन्तु यह मैं नही जानता, कि किस समय, कहाँ कैसे, और कितने समय के पश्चात् वह मरेगा ! पुनः मेरे प्राण-पूज्य माता-पिताओ ! मे यह नही जानता, कि किन कर्मों के द्वारा जीव नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव-गति में जन्म धारण करता है, पर हाँ, इतना तो मैं अवश्य ही जानता हूँ, कि जैसे भी जिसके कर्म होते है उसी के अनुसार, वे नरकादि में जा कर उत्पन्न होते हैं। अतः अब तो आप मेरी बात को अवश्य ही समझ

गये होगे। मैंने इसी लिए कहा था कि—जो मै जानता हूँ, उसको मैं नही जानता और जिसे मै नही जानता हूँ, उसे मैं जानता हूँ। पूजनीय! अब तो बहुत हो गई। आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मेरी तो अब दीक्षा ग्रहण ने ही की प्रबल इच्छा है। इस पर फिर भी उस के माता-पिताने उसे अनेको प्रकार के अनुकूल तथा प्रति-वचनो से समझाने की भरपूर चेष्टा की। परन्तु भगवान् के क्षणभर के सत्सङ्ग मात्र से, कुमार के शुभ कर्मो का उदय आज हो आया था। अतः वह तो टस से मस भी न हुआ। अब उस का निश्चय अटल था। तव तो उसके माता-पिता ने उस से, अन्त में, यूँ कहा—पुत्र! कम से कम यह बात तो मानलो, कि एक दिन का राज ही करते हुए हम तुम्हें अपनी आखों देख ले। कुमार ने अपनी मौन के द्वारा अपने माता-पिता के प्रस्ताव का अनुमोदन और समर्थन किया। अपने कुमार के इन भावों को देख, उनका कण्ठ गद्गद् हो गया। और शरीर रोमाञ्चित। फिर उन्होने कुमार का विधान के साथ राज्याभिषेक किया। कुमार ने राज्य की बागडोर को अपने हाथ में ले कर, सर्व प्रथम अपने दीक्षोत्सव की ही आज्ञा दी। तब महाबल की भांति कुमार ने भी दीक्षा धारण कर सामायिक से लेकर ग्यारह अङ्गों का सम्पूर्ण मंथन कर डाला। उन्होने गुणरत्न संवत्सर, आदि तपस्याएँ भी खूब ही की। अनेको वर्षो तक चारित्र-पालन किया। अन्तिम समय में, विपुलगिरि पर सन्थारा ले, मोक्ष-धाम में वे जा विराजे।

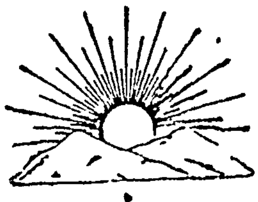
मूलः—उक्खेवओ सोलमस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समए—

णं वाणारसीए णयरी काममहावणे चेइए, तत्थ णं वाणारसीइ अलक्खे णामं राया होत्था। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावारे जाव विहरइ। परिसा निग्गया। तए णं अलक्खे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ तुट्ठ जहा कूणिए जाव पज्जुवासइ, धम्मकहा। तए णं से अलक्खे राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए जहा उदायणे तहा णिक्खंते, णवरं जेट्ठ पुत्तं रज्जे अहिसिंचइ, एक्कारस अंगा, बहूवासा परियाओ जाव विपुले सिद्धे एवं जंबू ! समणेणं जाव छट्ठमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

भावार्थः—श्री जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से कहा—भगवन् ! छटे वर्ग के पन्द्रहवे अध्याय में, जो वर्णन था, वह आपने कृपा कर के मुझे कह सुनाया। उसका ध्यान, धारणा और निधि-ध्यासन-पूर्वक मैने मनन भी किया। आगे इसी वर्ग के सोलहवें अध्याय में वर्णन है, उसे जानने की मेरी उदग्र इच्छा है। अस्तुः। उसी को फर्माने की अनुकम्पा आप अब मुझ पर दिखाइए। जम्बू ! सुनो ? भगवान् महावीर के समय मे काम-महावन नामक बाग से सुशोभित एक वाणारसी नगरी थी। उस समय वहाँ 'अलक्ष' नामक एक राजा अपने राज का सञ्चालन करता था। उसी अवधि में भगवान् महावीर छोटे-बडे सभी गाँवों में धर्मोपदेश देते हुए

वहाँ पधारे । भगवान् की पधरावनी उसी बाग में हुई । सारे नगर में, बिजली की भाँति, आपके शुभागमन का सुसंवाद पहुँच गया । अब तो आप के दर्शन करने तथा व्याख्यान श्रवण करने के लिए जनता नगरी की दशो दिशाओं से सिमिट-सिमिट कर आने लगी । प्रभु के पदार्पण का यह शुभ सन्देश राजा अलक्ष को भी एक दिन मिला । सन्देश के श्रवण करते ही, राजा बड़ा ही प्रसन्न हुआ । और कौणिक की तरह बड़े ठाट-बाट से, एक दिन प्रभु की सेवा मे आ उपस्थित हुआ । भगवान् ने उसे भी धर्मोपदेश सुनाया । उपदेश श्रवण कर राजा अलक्ष ने भगवान् महावीर के पास उदाई राजा की तरह, दीक्षा धारण करली । अन्तर केवल यही है, कि इन्हों ने अपने बड़े पुत्र के सिर-कन्धों राज का सारा भार रक्खा । अलक्ष मुनि ने ग्यारह अङ्ग तक का ज्ञानाभ्यास किया तदनन्तर, अनेकों वर्षो तक चारित्र-पालन कर अन्तिम समय मे विपुलगिरि पर सन्थारा ले, मुक्ति-धाम को वे सिधारे । जम्बू ! अन्तगड के छटे वर्ग मे इस प्रकार भगवान् महावीर ने वर्णन किया है ।

॥ इति षष्टमो वर्ग ॥



सप्तमो वर्गः

मूलः—जइ णं भंते ! सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ जाव तेरस अज्झयणा पण्णत्ता । तंजहा—नंदा तह नंदवई नंदोत्तर नंदसेणिया चेव । मरुया सुमरुया महमरुया मरुद्देवा य अट्ठमा ॥ १ ॥ भद्दा य सुभद्दा य सुजाया सुमणातिया । भूयदिन्ना य बोद्धव्वा सेणिय भज्जाण नामाइं । जइ णं भंते ! तेरस अज्झयणा पन्नत्ता पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए, सेणिए राया, वण्णओ । तस्सणं सेणियस्स रण्णो नंदा नामं देवी होत्था वण्णओ । सामी समोसढे परिसा निग्गया । तए णं सा नंदा देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जाव हट्ठ तुट्ठा कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता जाणं जहा पउमावई जाव एक्कारस्स अंगाइं अहिज्जित्ता वीसं वासाइं परियाओ जाव सिद्धा । एवं तेरस वि देवीओ णंदागमेण

णेयव्वाओ णिक्खेओ ।

भावार्थ—श्री जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मास्वामी से कहा—भगवन् ! छठे वर्ग में, जो वर्णन था, वह मैंने सुना । आगे सातवे वर्ग मे, जो वर्णन है, अब उसी को कृपा कर के फर्मावे । जम्बू ! सुनो ! सातवे वर्ग में कुल तेरह अध्याय है । उनके नाम इस प्रकार हैः-(१) नन्दा, (२) नन्दमति, (३) नन्दोत्तरा, (४) नन्द सेना, (५) महया, (६) सुमरुत्ता, (७) महा मरुत्ता (८) मरुदेवी, (९) भद्रा, (१०) सुभद्रा, (११) सुजाता, (१२) सुमति और (१३) भूतिदिन्ना । यह तेरह ही, राजा श्रेणिक की रानियाँ है । इन तेरह रानियो में से एक-एक रानी का एक-एक अध्याय मे, वर्णन है। यो, उनके नाम से ये तेरह अध्याय है । भगवन् ! सातवे वर्ग के, इन तेरह अध्यायों मे से, प्रथम के अध्याय मे किस विषय का वर्णन है ? जम्बू ! सुनो ! भगवान् महावीर की मौजूदगी के समय मे, राजगृह नामक एक नगरी, गुणशील नामक एक बाग से सुशोभित थी । उस समय वहां राजा श्रेणिक का शासन था । उस श्रेणिक राजा के नन्दा नाम की एक महारानी थी। उसी अर्से मे, भगवान् महावीर धर्मोपदेश करते-करते एक बार वहाँ पधारे । जनता भगवान् के पदार्पण की सूचना पाते ही, दर्शनार्थ दौड़ पड़ी । राजा श्रेणिक की महारानी नन्दा को जब यह सूचना मिली, तो वह भी अति ही प्रसन्न हुई । उसने अपने किसी एक कौटुम्बिक पुरुष को बुलाकर रथ तैयार करवा मँगाया । तब रथ पर सवार हो वह भी भगवान् के दर्शनार्थ गई। भगवान् का सदुपदेश श्रवण कर उसे संसार के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई । और वैराग्य उसके हृदय में जोर पकड़ गया।

बस, फिर क्या था। उसने राजा श्रेणिक को आज्ञा को प्राप्त कर, पद्मावती रानी के समान दीक्षा ग्रहण करली। ग्यारह अङ्गो तक उसने शास्त्रो का अध्ययन किया। और, बीस वर्ष चारित्र-पालन। अन्तिम समय मे सन्थारा ले, वे मुक्ति मे गई। इसी प्रकार, अवशेप रानियों का वर्णन भी समझना चाहिए। सभी रानियाँ समय-समय पर दीक्षा धारण कर, अन्त मे मोक्ष मे पहुँची। एक-एक रानी का एक-एक अध्ययन, यो पूरे तेरह अध्ययनों का वर्णन पाठक-वृन्द समझे।

॥ इति सप्तमो वर्ग ॥



अष्टमो वर्गः

मूलः—जइ णं भंते । समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते । अट्ठमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—काली सुकाली महाकाली कण्हा सुकण्हा महाकण्हा वीरकण्हा य बोद्धव्वा रामकण्हा तहेव य ॥ १ ॥ पिउसेणकण्हा नवमी दसमी महासेण कण्हा य । जइ णं भंते ! अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

भावार्थः—श्री जम्बूस्वामी ने सुधर्मास्वामी से कहा—भगवन्! श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी, जो मुक्ति में पधार गये, उन पुरुषों ने आठवें अङ्ग श्री अन्तगड सूत्र के सातवे वर्ग में जो वर्णन फर्माया, वह आपसे मैने सुना । परन्तु

भगवन् ! अन्तगढ के आठवे वर्ग में भगवान् ने क्या फर्माया है, कृपा कर उसे फर्मावें। जम्बू ! सुनो। आठवे अङ्ग श्री अन्तगढ-सूत्र के आठवे वर्ग मे कुल दस अध्ययन है। वे इस प्रकार है—(१) काली, (२) सुकाली, (३) महाकाली, (४) कृष्णा, (५) सुकृष्णा, (६) महाकृष्णा, (७) वीरकृष्णा, (८) राम कृष्णा, (९) पितृसेन-कृष्णा, और (१०) महासेन कृष्णा। यो दसों ही रानियों के नाम से दस अध्ययन है। भगवन् ! इन दस अध्ययन मे से प्रथम अध्ययन मे क्या वर्णन है ?

मूलः—एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं नयरी होत्था, पुण्णभद्दे चेइए, तत्थ णं चंपाए नयरीए कोणिए राया, वण्णओ। तत्थ णं चंपाए णयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा, कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया काली नामं देवी होत्था, वण्णओ। जहा नंदा जाव सामइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थ छट्ठट्ठमेहिं जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

भावार्थ.—हे जम्बू ! सुनो। भगवान महवीर के विद्यमान समय में, पूर्ण-भद्र नामक, मनोहर उद्यान से सुशोभित, 'चम्पा' नामक एक परम सुन्दर नगरी थी। वहाँ उस समय कौणिक राजा राज कर रहा था। उसी के राज-घराने मे राजा श्रेणिक की तो पत्नी, और राजा कौणिक की छोटी माता 'काली' नामक एक रानी थी।

उन्ही दिनों भगवान् महावीर विचरते-विचरते एक बार वहाँ पधारे। काली रानी नें भगवान् का उपदेश श्रवण कर नन्दा रानी की भाँति दीक्षा ग्रहण की। सामायिक से लेकर ग्यारह अङ्ग पर्यन्त का ज्ञानाभ्यास उन्होने किया। तपस्या करने में भी कुछ कमी उन्होने न रक्खी, कभी वे उपवास करती थी तो कभी बेला और कभी तेला। यों, नाना भाँति की तपस्या से अपनी आत्मा को आराधित करने मे तत्पर होकर, वे इधर-उधर विचरने लगी।

मूलः—तए णं सा काली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्ज चंद्णा अज्जा तेणेव उवागया उवागच्छित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवं उवसंपज्जेत्ताणं विहरेत्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंध करेह। तए णं सा काली अज्जा अज्जचंद्णाए अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तंजहा—

भावार्थः—एक दिन, वे 'काली' नामक साध्वी, महासतीजी श्री चन्दनबाला आर्याजी के पास आकर बोली—हे महाभागा ! मेरी ऐसी इच्छा है, कि आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर, मैं रत्नावलि नामक तपस्या की आराधना करूं। महासती चन्दनबालाजी ने कहा—हे देवानुप्रिये ! जिस प्रकार तुम्हें सुख प्राप्त हो, वैसा ही तुम करो। तपस्या करने मे तनिक भी विलम्ब न करो। इस प्रकार अपनी गुराणीजी से आज्ञा प्राप्त कर, वे 'काली' नामक

साध्वी उसी रत्नावलि नामक तपस्या को करने में सलग्न हो गई । वह 'रत्नावलि-तप' इस प्रकार है:—

रत्नावलि-तप

			२	२	२																
१	२	३	२	०	२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
			२	२	२																

			२	२	२																
१	२	३	२	०	२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
			२	२	२																

।२।२।
।२।२।२।
।२।२।२।२।
।२।२।२।२।२।
।२।२।२।२।२।२।
।२।२।२।२।२।
।२।२।२।२।
।२।२।२।
।२।२।२।

मूलः—चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठ छट्ठाइं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं

पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता सोलसमं करेइ २त्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता वीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता बावीसइमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चउवीसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छव्वीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता अट्ठावीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता तीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२त्ता बत्तीसइमं करेइ२त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२त्ता चोत्तीसइमं करेइ २त्ता सव्वकागु-णियं पारेइ२ त्ता चोत्तीसं छट्ठाइं करेइ२त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२त्ता चोत्तीसइमं करेइ२त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बत्तीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता तीसं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठावीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छव्वीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउवीसइमं करेइ२ त्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ २ त्ता बावीसइमं करेइ करेइ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बीसइमं

करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारस्समं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दस्समं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठ छट्ठाइं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। एवं खलु एसा रयणावलीए तवो कम्मस्स पढमा परिवाडी एगेणं संवच्छरेणं तिहिं मासेहिं बावीसाए य अहोरत्तेहिं अहासुत्ता जाव आराहिया भवइ।

भावार्थ.—उन काली नामक आर्याजी ने, रत्नावलि तपस्या करने के लिए उपवास किया। पारणा करके बेला किया। पारणा करके तेला किया। पारणा करके आठ बेले किये। पारणा करके उपवास किया। पारणा करके बेला किया। पारणा करके तेला किया यों अन्तर रहित चोला किया। पाँच किये। छः किये। सात,

आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह और सोलह किये । फिर चौतीस बेले किये । पारणा करके सोलह दिन की तपश्चर्या की । पारणा परके पन्दह दिन की तपस्या की । यों, चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, नौ, आठ, सात, छः पाँच, चार, तीन दो और उपवास किया । पारणा कर के आठ बेले किये । पारणा करके बेला किया। पारणा करके उपवास किया । फिर पारणा किया । इस प्रकार, उन्होने 'रत्नावलि-तप' की एक परिपाटी (लड़ी) की । ऐसी तपस्या की एक बार लड़ी करने मे पूरा-पूरा एक वर्ष, तीन महीने और बावीस दिन लगते है । जिस प्रकार सूत्र में विधि बताई है, उसी तरह इन आर्याजी ने इस की आराधना की ! ऐसी एक परिपाटो करने में तीन सो चौरासी दिन उपवास के और अठ्यासी दिन पारणे के, यो सब चार सौ बहत्तर दिन होते है ।

मूलः—तयाणंतरं च णं दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ २ त्ता विगइवज्जं पारेइ २त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता विगइवज्जं पारेइ २ त्ता एवं जहा पढमाए वि, णवरं सव्वपारणए विगइवज्जं पारेइ जाव आराहिया भवइ। तयाणंतरं च णं तच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ २ त्ता अलेवाडं पारेइ सेसं तहेव । एवं चउत्था परिवाडी नवरं सव्वपारणए आयंबिलं पारेइ, सेसं तं चेव । पढमंमि सव्वकामं, पारणयं विइयए विगइवज्जं। ततियं मि अलेवाडं आयंबिल-

यो चउत्थंमि ॥ तए णं सा काली अज्जा रयणावली तवोकम्मं पंचहिं संवच्छरेहिं दोहि य मासेहिं अट्ठावीसाए य दिवसेहिं अहासुत्तं जाव आराहेत्ता जेणेव अज्ज चंदणा अज्जा तेणेव उवागया उवागच्छित्ता अज्जचंदणं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता बहूहिं चउत्थं जाव अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।

भावार्थः—तत्पश्चात् उन 'काली' नामक साध्वीजो ने इस 'रत्नावलि तपस्या' की एक परिपाटी—श्रृङ्खला कर ली । और उसके साथ ही, वे दूसरी परिपाटी श्रृङ्खला करने को उद्यत हुई । प्रथम, उपवास किया । उपवास के पारणे मे, विगय, दूध, दही, मिष्टान्न, तेल, घी, आदि का खाना एक-दम बन्द कर दिया । इस प्रकार उपवास का पारणा कर उन ने बेला किया । पारणे मे वही विगय बन्द रक्खी । इसी तरह, तेला किया । पारणा करके आठ बेले किये । पारणा करके उपवास किया । बेला किया । तेला किया । यूं सोलह तक किया । फिर चौतीस बेले किये । पारणा करके सोलह किये । फिर पन्द्रह, चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, नौ, आठ, सात, छः पाँच, चार तीन, दो, और उपवास किया । पारणा करके आठ बेले किये । पारणा करके तेला किया । बेला किया और उपवास किया । सभी पारणो में विगय बन्द रक्खी । जिस प्रकार प्रथम परिपाटी की, उसी तरह दूसरी भी की । इन मे विगय तो खाई ही नही गई, साथ ही मे, रत्नावलि की तीसरी लडी भी इसी तरह की । यहाँ तक, कि विगय बन्द रखने

के साथ ही साथ, घी से चुपड़ी हुई रोटी तक न खाई। अर्थात् लेपवाली वस्तुओं का खाना बिलकुल ही छोड़ दिया। तीसरी परिपाटी के पूर्ण होते ही, चौथी परिपाटी भी इसी तरह की। पर इसके पारणे के दिन तो, फिर भी आयम्बिल-लूखी रोटी और वह भी धोवन या ठण्डे किये हुए गर्म जल में भिगो कर खा लेती थी। इस प्रकार वे 'काली' नामक साध्वी जी 'रत्नावलि तपस्या' करते हुए पूरे-पूरे पाँच वर्ष, दो महीने और अट्ठाइस दिनों मे, जैसे सूत्र मे विधि बतलाई गई है, उसी प्रकार इस तपस्या की आराधना कर, अपनी गुराणी श्री चन्दनबाला आर्याजी के पास वे आई। और, उन्हे विधि-पूर्वक वन्दना कर फिर भी फुटकर उपवास, बेले, तेले, की तपस्या करती हुई, अपनी आत्मा को पवित्र वे करती रही।

मूलः—तए णं सा काली अज्जा तेणं ओरालेणं जाव धमणिसंतया जाया यावि होत्था, से जहा इंगालसगडी वा जाव सुहुयहुयासणे इव भासरासिपलिच्छण्णा तवेणं तएणं तव-तेयसिरीए अइव उवसोभेमाणी चिट्ठइ।

भावार्थः—तदनन्तर, उन 'काली' नामक आर्याजी का शरीर इस प्रकार की प्रधान तपस्या करने से प्रायः माँस और खून से रहित हो गया। केवल अस्थि-पञ्जर का ढाँचा मात्र वे रह गई। उठते-बैठते, उनकी हड्डियाँ कड़-कड़ शब्द करने लगी। और उनके शरीर में चहुँ ओर नसों का जाल-सा दिखाई देने लगा। वे अपनी आयुष्य-

बल–जीवन ही से जीवित थी और चलतो-फिरती थी । वे इतनी कृश हो गई थी, कि बोलना तो दूर रहा पर, बोलने के विचार–मात्र से ही उन्हे कष्ट प्राप्त होता था । जिस प्रकार सूखे काष्ट, सूखे पत्ते या कोयले की भरी हुई गाडी चलते समय आवाज करती है, उसी तरह उनकी हड्डिया भी उठते-बैठते, चलते फिरते आवाज करने लगी थी । जो भी उन साध्वी के शरीर का मॉस एव रुधिर प्राय. सूख गया था, तब भी तप और तेज रूपी लक्ष्मी से वे दिन–दूनी और रात–चौगुनी सम्पन्न हो कर शोभा को प्राप्त होती जा रही थी ।

मूलः–तए णं तीसे कालीए अज्जाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले अयं अज्झत्थिए जहा खंदयस्स चिंता जहा जाव अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार परक्कमे सद्धा धिई संवेगे ताव ताव मे सेयं कल्लं जाव जलंते अज्ज चंदणं अज्जं आपुच्छित्ता अज्ज चंदणाए अज्जाए अब्भणुन्नायाए समाणीए संलेहणा भूसणा आराहणा भत्तपाणपडियाइक्खे कालं अणवकंखमाणे विहरेत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, २ त्ता कल्लं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी–इच्छामि णं अज्जो ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा जाव विहरेत्तए ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह। तओ काली अज्जा अज्ज चंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी संलेहाणा भुसिया जाव विहरइ। सा काली अज्जा अज्ज चंदणाए अंतिए सामाइय-माईयाइं एक्कारस्स अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुन्नाइं अट्ठ संवच्छराइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं भूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता जस्सट्ठा कीरइ जाव चरिमुस्सासनीसासेहिं सिद्धा।

भावार्थः—तत्पश्चात, उन 'काली' आर्याजी को, एक रोज, पिछली रात्रि के समय खन्दक की भाँति ऐसे विचार उत्पन्न हुए, कि मेरा शरीर तपस्या से इस प्रकार कृश हो गया, तब भी मुझ मे उत्थान, बल, वीर्य, पुरुपार्थ, पराक्रम, श्रद्धा, धृति संवेग और शक्ति आदि अभी तक विद्यमान है। अतएव कल सूर्योदय होते ही मुझे गुराणी महासती चन्दनबालाजी से पूछ कर, आहार-पानी का जीवन भर के लिए परित्याग कर लेना चाहिए। तथा सन्थारा करके जीवन एवं मृत्यु की आशा-रहित होकर, विचरण करना चाहिए। ऐसा विचार कर, सूर्योदय होते हो वे 'काली' नामक आर्याजी, महासती चन्दनबालाजी के पास आई और उन्हें वन्दना कर के बोली-महाभागा ! मेरी इच्छा है, कि आप की आज्ञा प्राप्त होने पर, मै सन्थारा करके रहूँ। उत्तर में

महासती चन्दनबाला आर्याजी ने फर्माया—हे देवानुप्रिये ! जो तुम्हें सुखकर हो वैसा ही करो । इसमे विलम्ब मत करो । इस प्रकार आज्ञा हो जाने पर, उन्होने सन्थारा कर लिया । इन साध्वीजी ने अपनी गुराणी महासतो चन्दनबालाजी के समीप सामायिक से लेकर ग्यारह अङ्गो तक का सम्पूर्ण ज्ञानाभ्यास किया । आठ वर्ष तक चारित्र पाला । और, एक महीने के सन्थारे मे सम्पूर्ण घनघाती कर्मो का अन्त कर, अन्तिम श्वासोच्छ्वास के पश्चात्, वे सिद्धगति मोक्ष मे पहुँची ।

मूलः—उक्खेवओ बियअज्झयणस्स । एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णाम णयरी, पुण्णभद्दे चेइए, कोणिए राया, तत्थ णं सेणियस्स रण्णो भज्जा कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया सुकाली नाम देवी होत्था । जहा काली तहा सुकाली वि णिक्खंता जाव बहूहिं चउत्थ० अप्पाणं भावेमाणी विहरइ । तए णं सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्जचंदणा अज्जा जाव इच्छामि णं अज्जो ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी कणगावली तवोकम्मं उपसंपज्जित्ताणं विहरेत्तए । एवं जहा रयणावली तहा कणगावली वि णवरं तिसु ठाणेसु अट्ठमाइं करेइ जहा रयणावलीए छट्ठाइं एक्काए परिवाडीए

संवच्छरो पंच मासा अट्ठारस दिवसा, सेसं तहेव । नव वांसा परियाओ जाव सिद्धा ।

भावार्थः—जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से कहा—भगवन् ! मैने आपके श्री-मुख से प्रथम अध्याय श्रवण कर लिया । आगे दूसरे अध्याय में जो वर्णन है, कृपा कर के अब उसे फरमावे। सुधर्मा स्वामी बोले जम्बू ! सुनो । उस काल में, वही 'चम्पा' नाम की एक नगरी थी । वहां कौणिक राजा राज्य करता था। श्रेणिक राजा की पत्नी और कौणिक राजा की लघु-माता, सुकाली नाम की एक रानी थी । उन दिनों, वहां एक बार भगवान् महावीर स्वामी पधारे । जिस प्रकार, पहले काली रानी ने दीक्षा धारण की, उस प्रकार इस सुकाली महारानी ने भी दीक्षा ग्रहण की । एक दिन यही सुकाली नामक साध्वी, महासती चन्दनबाला आर्याजी के पास आकर, यों बोली—हे महाभागा आर्याजी ! आपकी आज्ञा होने के पश्चात्, मेरी इच्छा है, कि 'कनकावलि, नामक तपस्या की आराधना मै करूँ । उत्तर में उन्होने कहा-जो तुम्हे सुखकर प्रतीत हो, वैसा तुम करो । तदनन्तर, उन सुकाली आर्याजी ने, जिस प्रकार काली आर्याजी ने 'रत्नावलि' तपस्या की थी, उसी प्रकार इन्होंने भी 'कनकावलि' नामक तपस्या की । परन्तु जहाँ रत्नावलि में तीन जगह बेले किये । यहाँ उस जगह तेले किये । इस 'कनकावलि' की एक परिपाटी श्रृङ्खला करने में पूरा-पूरा एक वर्ष, पाँच महीने और बारह दिन लगते हैं । इस मे अठ्ठयासी दिन पारणे के, और एक वर्ष दो महीने एवं चौदह दिन तपस्या के होते है । यों चारो ही परिपाटी करने में पाँच वर्ष, नौ महीने और अट्ठारह दिन लग जाते है । वह 'कनकावलि' तपस्या इस प्रकार है:—

			३ ३ ३																		
१	२	३	३	०	३	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
			३ ३ ३																		

कनकावलि-तप

			३ ३ ३																		
१	२	३	३	०	३	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
			३ ३ ३																		

— ३ —
— ३ — ३ —
— ३ — ३ — ३ —
— ३ — ३ — ३ — ३ —
३ — ३ — ३ — ३ — ३
— ३ — ३ — ३ — ३ —
३ — ३ — ३ — ३ — ३
— ३ — ३ — ३ — ३ —
— ३ — ३ — ३ —
— ३ — ३ —
— ३ —

इस तपस्या के समाप्त होने पर, फिर भी कई तपस्याएँ उन्होंने की। जिससे उनका शरीर सूखकर काँटा बन गया। अन्तिम दिनो मे सन्थारा कर नौ वर्ष का चारित्र पाल कर ये भी मोक्ष में पहुँची।

मूलः—एवं महाकाली वि णवरं खुड्डागं सीहनिक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तं जहा—चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं

करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसम्मं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ पारेइत्ता बीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बीस-इमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारसमं करेइ करेइत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं

करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता वारसमं करेइत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता छट्ठं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगु-णियं पारेइ २ त्ता तहेव चत्तारि परिवाडीओ, एक्काए परिवाडीए छम्मासा सत्त य दिवसा, चउण्हं दो वरिसा अट्ठावीसा य दिवसा जाव सिद्धा । एवं कण्हा वि णवरं महालयं सीह-णिक्कीलियं तवोकम्मं जहेव खुड्डागं, णवरं चोत्तीसइमं जावे णयव्वं तहेव ऊसारेयव्वं, एक्काए वरिसं छम्मासा अट्ठारस य दिवसा, चउण्हं छ वरिसा दो मासा बारस य अहो-रत्ता, सेसं जहा कालीए जाव सिद्धा ।

भावार्थः—हे जम्बू ! इस वर्ग के तीसरे अध्ययन में वर्णन है, कि चम्पा नगरी के श्रेणिक राजा की पत्नी

और कौणिक की छोटी माता महाकाली रानी ने भी सुकाली रानीको तरह दीक्षा धारण की। इन महाकाली नामक साध्वीजी ने लघुसिह निष्क्रीड़ित' नामक तप किया। वह इस प्रकार है:–सर्वप्रथम उपवास किया। पारणा करके वेला किया। पारणा करके उपवास किया। पारणा करके तेला किया। यो बेला, चौला, तेला, पँचोला, चौला छः, पाँच, सात, छः, आठ, सात, नौ, आठ, नौ, सात, आठ, सात, पाँच, छः, चौला, पँचौला, तेला, चौला, वेला, तेला, उपवास, बेला, और उपवास किया। इस प्रकार 'लघुसिह निष्क्रीडित' नामक तप की एक परिपाटी की। जिसमे तैंतोस दिन तो पारणा किये और पूरे पाँच महीने एवं चार दिन की तपस्या हुई। यों, चार परिपाटी इन ने की। जिसमें दो वर्ष और अट्ठाईस दिन लगे। इस तपस्या के हार का चित्र निम्नलिखित है :—

१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९
लघुसिह निष्क्रीडित तप															८
१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९

इस प्रकार के 'लघुसिंह निष्क्रीड़ित' तप की उन महाकाली आर्याजी ने सूत्रों में बताई हुई विधि के अनु-

सार आराधना की ! तत्पश्चात्, फिर भी उन आर्याजी ने फुटकर कई तपस्याएँ की। अन्तिम समय मे सन्थारा करके कर्मो का सम्पूर्ण नाश हो जाने पर, मोक्ष मे वे पहुँची। इसी तरह राजा श्रेणिक की पत्नी और कौणिक की छोटी माता, कृष्णा नामक रानी ने, भगवान् का उपदेश श्रवण कर श्री चन्दनबाला आर्याजी के पास दीक्षा धारण की। और, जिस प्रकार महाकाली आर्याजी ने 'लघुसिह निष्क्रीडित' नामक तप मे, नौ तक की तपस्या की थी, ठीक उसी प्रकार इस तप की प्रथम परिपाटी–शृङ्खला इस प्रकार की.–सर्वप्रथम उपवास किया। पारणा करके बेला किया। पारणा करके उपवास किया। यो तेला किया। बेला, चौला, तेला, पँचोला, चौला, छः, पॉच, सात, छ, आठ, सात, नौ, आठ, दस, नौ, ग्यारह, दस, बारह, ग्यारह, तेरह, बारह, चौदह, तेरह, पन्द्रह, चौदह, सोलह, पन्द्रह, सोलह, चौदह, पन्द्रह, तेरह, चौदह, बारह, तेरह, ग्यारह, बारह, दस, ग्यारह, नौ, दस, आठ, नौ, सात, आठ, छ. सात, पॉच, छः, चौला, पँचोला, तेला, चौला, बेला, तेला, उपवास, बेला, और फिर, पारणा करके उपवास किया। यों, एक परिपाटी की। जिसमें, इकसठ दिन उन सतीजी ने पारणा-भोजन किया और पूरे-पूरे एक वर्ष, चार महीने तथा सत्रह दिन, अर्थात् चार सौ सत्तानवे दिन तपस्या की। ऐसी एक परिपाटी करके, साथ ही साथ, दूसरी, तीसरी और चौथी परिपाटी भी की। जिसमे पूरे-पूरे छः वर्ष, दो महीने और बारह दिन लगे ! इस 'महासिहनिष्क्रीडित-तप' की एक परिपाटी इस प्रकार है:–

१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	[illegible]	७	६	८	७	९	८	१०	९	११	१०	१२	११	१३	१२	१४	१३	१५	१४	१६
महासिंह निष्क्रीडित तप																													१५
१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	८	१०	९	११	१०	१२	११	१३	१२	१४	१३	१५	१४	१६

इस प्रकार, कृष्णा आर्याजी ने महासिंहनिष्क्रीड़ित तपस्या विधि-पूर्वक करके, फिर भी कई फुटकर तपस्याएँ की। अन्तिम समय में, सन्थारा करके, काली आर्याजी के समान ये भी मोक्ष में पहुँची।

मूलः—एवं सुकण्हावि, णवरं सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं उपसंपज्जित्ताणं विहरइ पढमे सत्तए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ एक्केक्कं पाणयस्स, दोच्चे सत्तए दो दो भोयणस्स दो दो पाणयस्स पडिगाहेइ, तच्चे सत्तए तिण्णि भोयणस्स तिण्णि पाणयस्स, चउत्थे चउ, पंचमे पंच, छट्ठे छ, सत्तमे सत्तए सत्त दत्तीओ भोयणस्स पडिग्गाहेइ सत्त पाणयस्स, एवं खलु सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं एगूणपण्णाए राइंदिएहिं एगेण य छन्नउएणं भिक्खासएणं

अहासुत्ता जाव आराहेत्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया अज्जचंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेत्तए । अहासुहं देवाणुप्पिए मा पडिबंधं करेह ।

भावार्थः—इसी तरह, राजा श्रेणिक की पत्नी और कौणिक की छोटी माता, सुकृष्णा नाम की रानी ने भी भगवान् महावीर का उपदेश श्रवण कर, श्रीचन्दनबाला आर्याजी के पास, दीक्षा धारण की । तत्पश्चात्, सुकृष्णा आर्याजी ने 'सप्त-सप्तमिका' नामक भिक्षु-पडिमा अङ्गीकार की । वह इस प्रकार है:—सात दिन तक नित्यम्प्रति एक बार गृहस्थों के द्वारा दिये हुए भोजन और पानी पर निर्वाह करना । अर्थात् एक वक्त मे रोटी का पाव हिस्सा और एक बार की धारा में, जितना पानी दिया, तो उतना ही उस रोज खाते-पीते है, किन्तु दुबारा माँग कर फिर नही लाते है । यही क्रम सात दिन तक रक्खा जाय । इसी को 'सप्त-सप्तमिका-भिक्षु पडिमा' कहते है। इसी प्रकार, दूसरे सप्ताह मे, दो बार का दिया हुआ भोजन और पानी ग्रहण किया । और, फिर इसी प्रकार क्रमश. तीसरे सप्ताह मे तीन बार, चौथे सप्ताह मे चार बार, पाँचवे में पाँच बार, छठे में छः बार और सातवे सप्ताह में सात बार गृहस्थों द्वारा दिये गये भोजन और पानी को ग्रहण कर, उसी पर अपने प्राणों की

प्रति-पालना की। यों, उनपचास दिन तक इस प्रकार की सप्त भिक्षु पड़िमा, सूत्र में जिस विधि से पाली जाती

सप्त–सप्तमिका

१	१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४	४
५	५	५	५	५	५	५
६	६	६	६	६	६	६
७	७	७	७	७	७	७

अष्ट अष्टमिका

१	१	१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२	२	[illegible]
३	३	३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४	४	४
५	५	५	५	५	५	५	५
६	६	६	६	६	६	६	६
७	७	७	७	७	७	७	७
८	८	८	८	८	८	८	८

है, उसी प्रकार ,सुकृष्णा' नामक आर्याजी ने इस तपस्या को समाप्त कर, वे महासती चन्दनबालाजी आर्याजी के पास आई। और उन्हे वन्दना करके बोली–हे देवानुप्रिये ! मेरी इच्छा है, कि आपकी आज्ञा होने के पश्चात्, 'अष्ट-अष्टमिका भिक्षु पडिमा' को अङ्गीकार करके मही मे विचरण मै करूं उत्तर में श्री चन्दनबालाजी ने फर्माया, जिस प्रकार भी तुम्हे सुख हो, वैसा ही करो। उसमे विलम्ब को रत्ती–भर भी स्थान न दो।

मूलः–तए णं सा सुकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अब्भणुणायासमाणी अट्ठअट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जिताणं विहरइ, पढमे अट्ठए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिंपडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणगस्स दत्तिं जाव अट्ठमे अट्ठए अट्ठट्ठभोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ अट्ठ पाणगस्स। एवं खलु एयं अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहि य अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता नवनवमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे नवए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइय एक्केक्कं पाणयस्स जाव नवमे नवए नव दत्तिं भोयणस्स पडिग्गाहेइ य नव नव पाणयस्स। एवं खलु नवनवमियं भिक्खुपडिमं एकासीइ राइंदिएहिं चउहि पंचोत्तरेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्ता जाव आराहित्ता दस दसमि

यं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ । पढमे दसए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ य एक्केक्कं पाणयस्स जाव दसमे दसए दस दस भोयणस्स दत्तिं पडिग्गाहेइ दसदस पाणयस्स एवं खलु एयं दस दसमियं भिक्खुपडिमं एक्केणं राइंदियसएणं अद्धछट्ठेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहेइ २ त्ता बहूहिं चउत्थ जाव मासद्धमास विविहतवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ । तए णं सा सुकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव सिद्धा ।

भावार्थः—सप्त-सप्तमिका भिक्षुपड़िमा कर लेने के वाद उन 'सुकृष्णा' नामक आर्याजी ने महासती चन्दनवालाजी से, अष्टम-अष्टमिका भिक्षुपड़िमा करने की आज्ञा प्राप्त की और तदनुसार तपस्या करना शुरू किया। प्रथम के अठवाड़े (आठ दिनों) में, नित्यम्प्रति एक दात पानी की और एक दात भोजन की अर्थात् गृहस्थियों द्वारा दिये हुए एक बार के आहार और पानी को ग्रहण कर, उसी पर निर्वाह किया । इसो प्रकार दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवे, छठे, सातवे और आठवे अठवाड़े में, नित्यम्प्रति क्रमशः दो, तीन, चार पाँच, छः, सात, और आठ बार गृहस्थियों द्वारा दिये गये आहार और पानी को ग्रहण कर, उसी पर अपना जीवन धारण वे करती रही । यो सम्पूर्ण पड़िमा में कुल चौंसठ दिन लगे । और दो सौ अठासी दात हुई । अर्थात् दो सौ अठासी बार आहार पानी लिया गया । इसी प्रकार नव-नवमिका भिक्षुपड़िमा की । प्रथम नवमिका, अर्थात् प्रत्येक नौ-नौ दिनों में

नित्यम्प्रति, एक-एक दात पानी की और एक-एक दात भोजन की उन्होने ली। ऐसे ही दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवी, छठी, सातवी आठवी और नौवी नवमिका मे, नित्यम्प्रति क्रमश: दो, तीन, चार, पाँच छ:, सात, आठ और नौ बार गृहस्थियों द्वारा बहराये गये, आहार और पानी को ग्रहण कर, उसी से अपना निर्वाह किया। इस 'नव-नवमिका-भिक्षु पड़िमा' मे पूरे-पूरे एक्यासी दिन लगे। और चार सौ पाँच बार का दिया हुआ आहार-पानी ग्रहण किया गया। इस 'नव-नवमिका भिक्षु पडिमा' को समाप्त कर लेने के पश्चात्, उन्होने 'दस-दशमिका भिक्षु-पडिमा' अङ्गीकार की। प्रथम दशमिका, अर्थात् प्रथम के दश दिनो मे, नित्यम्प्रति एक बार का दिया हुआ भोजन और पानी ग्रहण किया। यो दूसरी, तीसरी चौथी, पाँचवी, छठी, सातवी, आठवी नौवी और दशवी दशमिका मे नित्यम्प्रति, क्रमश: एक से लगाकर दश बार गृहस्थियो द्वारा दिये गये आहार और पानी को ग्रहण कर, उस पर अपना जीवन निर्वाह किया। इस तपस्या को पूर्ण करने मे कुल सौ दिन लगे। जिसमें भोजन और पानी की साढ़े पाँच सौ दात्त हुई। इस तपस्या को पूर्ण कर लेने के पश्चात्, उपवास, बेले, तेले, मासक्षमण, अर्द्ध मास-क्षमण की भी तपश्चर्या इन्होने की। जिससे श्री सुकृष्णा आर्याजी का शरीर बड़ा ही कृश हो गया। किन्तु फिर भी, अन्तिम समय मे, सन्थारा करके सम्पूर्ण कर्मो का नाश करती हुई, वे मोक्ष-धाम में पहुँची।

उपरोक्त 'नव-नवमिका' और 'दश-दशमिका' भिक्षु पड़िमा' तप के यन्त्र निम्न प्रकार है :-

नवम-नवमिका

१	१	१	१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४	४	४	४
५	५	५	५	५	५	५	५	५
६	६	६	६	६	६	६	६	६
७	७	७	७	७	७	७	७	७
८	८	८	८	८	८	८	८	८
९	९	९	९	९	९	९	९	९

→ दश-दशमिका

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०

मूलः—एवं महाकण्हावि, णवरं खुड्डागं सव्वओभद्दं पडिमं उपसंपज्जित्ताणं विहरइ, तं-जहा—चउत्थं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ२त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२त्ता अट्ठमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम-

गुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता छट्ठं करेइ२त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२त्ता। एवं खलु एवं खुड्डागसव्वओभद्दस्स तवोकम्मस्स पढमं परिवाडिं तिहिं मासेहिं दसहिं दिवसेहिं अहासुत्तं जाव आराहेत्ता दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ २ त्ता विगइवज्जं पारेइ विगइवज्जं पारेत्ता जहा रयणावलीए तहा एत्थ वि चत्तारि परिवाडीओ पारणा तहेव। चउण्हं कालो संवच्छरो मासो दस य दिवसा, सेसं तहेव जाव सिद्धा।

भावार्थः—इसी तरह, राजा श्रेणिक की पत्नी और कौणिक की छोटी माता, महाकृष्णा रानी ने, भगवान् महावीर का उपदेश श्रवणकर, महासती चन्दनबाला आर्याजी के पास दीक्षा धारण की। तत्पश्चात् महासती चन्दनबालाजी की आज्ञा प्राप्त कर, 'लघुसर्वतोभद्र' नामक तपस्या की आराधना इनने की। वह इस प्रकार है:—सर्व प्रथम, उपवास किया। पारणा करके बेला किया। पारणा करके तेला किया। यों, चौला, पँचोला,

तेला, चौला, पॅचोला, उपवास, बेला, पँचोला, उपवास, बेला, तेला, चौला, बेला, तेला, चौला पॅचोला, उपवास, चौला, पॅचोला, उपवास, बेला और तेला किया। इस प्रकार 'लघु सर्वतोभद्र' नामक तप को एक

लघुसर्वतोभद्र तप

१	२	३	४	५
३	४	५	१	२
५	१	२	३	४
२	३	४	५	१
४	५	१	२	३

परिपाटी—लडी—उन श्री महाकृष्णा आर्याजी ने पूरी की। जिसके करने मे कुल पचहत्तर दिन की तपस्या और पच्चीस दिन पारणे के होते है। इस परिपाटी को समाप्त कर, साथ ही साथ, दूसरी परिपाटी भी इसी प्रकार

की। किन्तु पारणे मे दूध, दही, घी, तेल, मिष्टान्न, खाना बिल्कुल बन्द कर दिया। तीसरी परिपाटी में, पारणे के दिन, लूखी रीटी खाना प्रारम्भ किया। अर्थात् घी, तेल के लेप-मात्र वाली सम्पूर्ण वस्तुओं का खाना ही बिलकुल बन्द कर दिया। और चौथी परिपाटी में पारणे के दिन आयम्बिल किये। जिस प्रकार 'रत्नावलि' तपस्या की चार परिपाटी-श्रृंखला होती है, उसी प्रकार इस तपस्या की चारों परिपाटियों की सूत्रानुसार आराधना की। जिसमें पूरे तीन सौ दिन तपश्चर्या के और सौ दिन पारणे के होते है।

महाकृष्णा आर्याजी ने इस लघुसर्वतोभद्र तपस्या करने के पश्चात्, फिर भी अनेकों छोटी-बड़ी फुटकर तपस्याएँ की। अन्तिम समय मे सन्थारा ले अपने सर्व कर्मो को नष्ट करते हुए, उन्होंने सदा के लिए जन्म-मरण से छुटकारा पाया।

मूलः—एवं वीरकण्हा वि णवरं महालयं सव्वतोभद्दं तवोकम्मं उपसंपज्जित्ताणं विहरइ, तं जहा-चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउदसं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता

पढमालया दसमं करेइ२त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२त्ता दुवालसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउदसं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता अट्ठमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२त्ता बितिया लया। सोलसं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चउत्थं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२त्ता छट्ठं करेइ२त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउदसं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता तितिया लया। अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ

२त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता छट्ठं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चउत्थीलया। चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता पंचमी लया। छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठीलया। दुवालसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकाममगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २

त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सत्तमी लया। एक्केक्कं लयाए अट्ठ मासा पंच य दिवसा चउण्हं दो वासा अट्ठ मासा वीसं दिवसा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।

भावार्थ–जम्बू! अन्तगढ-सूत्र के सातवे अध्ययन मे, वीरकृष्णा, जो कि श्रेणिक राजा की पत्नी और कौणिक की छोटी माता कही गई है, उन्होने भगवान् का उपदेश पाकर, महासती चन्दनबाला आर्याजी के पास दीक्षा धारण की। जिनका वर्णन है, कि उन वीरकृष्णा आर्याजी ने दीक्षा लेने के अनन्तर अपनी जननी समान श्रीमती गुराणीजी की आज्ञा लेकर 'महासर्वतोभद्र' नामक तपस्या करना प्रारम्भ की। सबसे पहले उपवास किया। पारणा करके बेला किया। पारणा करके तेला किया। यो चौला, पंचौला, छः, सात, चौला पॅचोला, छ., सात, उपवास, बेला, तेला, सात, उपवास, बेला, तेला, चौला, पॅचौला, छः, तेला, चौला, पॅचोला, छः, सात, उपवास, बेला, छः, सात, उपवास, बेला, तेला, चौला, पॅचोला, बेला, तेला, चौला, पॅचोला, छ, सात, उपवास, पॅचोला, छ., सात, उपवास, बेला, तेला, और, चौला, किया। इस प्रकार इस तप की यह एक परिपाटी हुई। इसे करके, साथ ही साथ, दूसरी परिपाटी शुरू की। परन्तु इस बार पारणे में, दूध, दही, घी,

आदि विगय (स्निग्ध पदार्थ) खाना बन्द कर दिया। इसी तरह तीसरी परिपाटी भी की। किन्तु इस तपस्या के पारणे के दिन घी, मिष्टान्न, आदि विगयो से लेपित मात्र वस्तुओं तक का परित्याग कर दिया। केवल

महासर्वतोभद्र तप ←

१	२	३	४	५	६	७
४	५	६	७	१	२	३
७	१	२	३	४	५	६
३	४	५	६	७	१	२
६	७	१	२	३	४	५
२	३	४	५	६	७	१
५	६	७	१	२	३	४

लूखा भोजन किया। चौथी परिपाटी की तपस्या के पारणे के दिन तो लूखे भोजन को भी पानी में भिगोकर खा लेने का नियम लिया। इस तप की एक परिपाटी करने में तपस्या के दिन एक सौ छन्नवें लगते हैं। और

पारणे के उन पचास दिन होते है । यो, कुल दो सौ पैंतालीस दिन इसमें एक-बार लगते है । चारों ही परिपाटियो के करने कुल दो वर्ष, आठ मास और बीस दिन पूरे-पूरे लगते है ।

उन वीर कृष्णा आर्याजी ने इस 'महासर्वतोभद्र' नामक तपस्या को करने के पश्चात् फिर भी फुटकर तपस्या बहुत की । अन्तिम समय मे सन्थारा करके मुक्ति मे पहुँची है ।

मूलः—एवं रामकण्हावि, णवरं भद्दोत्तरपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तं जहा—दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चाद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ ता अट्ठारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम-णियं पारेइ २त्ता वीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता वीस-इमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं

पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता अट्ठारसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता वीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारस्समं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता वीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता सोलसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता सोलसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता । एक्काए कालो छम्मासा वीस य दिवसा, चउण्हं कालो दो वरिसा दो मासा वीस य दिवसा, सेसं तहेव जहा काली जाव सिद्धा ।

भावार्थः—इसी प्रकार, राजा श्रेणिक की रानी और कौणिक की छोटी माता रामकृष्णादेवी भी भगवान

महावीर का उपदेश श्रवणकर, श्री चन्दनबालाजी के द्वारा दीक्षित हुई। इन नव-दीक्षित श्री रामकृष्णा आर्याजी ने अपनी पूज्या गुराणीजी की आज्ञा प्राप्त कर, 'भद्रोत्तर' नामक तपस्या को नीचे लिखे अनुसार करना प्रारम्भ किया —सबसे प्रथम पचौला किया। पारणा करके छः किया। पारणा करके सात किया। यो आठ,

→ भद्रोत्तर तप

५	६	७	८	९
७	८	९	५	६
९	५	६	७	८
६	७	८	९	५
८	९	५	६	७

नौ, सात, आठ, नौ, पाँच, छ', नौ, पाँच छ, सात, आठ, छः, सात, आठ, नौ, पाँच, आठ, नौ, पाँच, छः और सात, किये। इस प्रकार एक परिपाटी पूरी हुई। यों चार पूरी-पूरी परिपाटियाँ उन्होंने की। दूसरी परिपाटी के पारणे के दिनों में, समस्त विगय वस्तुओं का सेवन बिलकुल ही छोड़ दिया। तीसरी परिपाटी में, विगय की लेपित-मात्र वस्तुओं का त्याग किया। और चौथी परिपाटी के पारणों में आयम्बिल किये। एक बार की

परिपाटी-शृङ्खला में कुल एक सौ पिचहत्तर दिन तपस्या और केवल पच्चीस दिन पारणे के होते हैं। यों, चारों ही में कुल दो वर्ष, दो मास और वीस दिन होते है।

रामकृष्णा आर्याजी के द्वारा, इस 'भद्रोत्तर' नामक तप को करने के पश्चात्, छुटकर और भी काफी मात्रा में कई तपश्चर्याएं की गईं। अन्तिम दिनों में सन्थारा करके मुक्ति में वे पहुँची।

मूलः—एवं पिउसेणकण्हा वि, णवरं मुत्तावली तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तं जहा-चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ त्ता छट्ठं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चउत्थं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता अट्ठमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चउत्थं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता दसमं करेइ २त्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चउत्थं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चोद्दसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चउत्थं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं

पारेइ २ त्ता अट्ठारसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २त्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ २ त्ता बीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बावीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउवीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छब्बीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठावीसं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता तीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बत्तीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ त्ता चोत्तीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बत्तीसइमं करेइ २ त्ता। एवं तहेव ओसारेइ जाव

चउत्थं करेइ चउत्थं करेइत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। एक्काए कालो एक्कारसमासा पन्नरस य दिवसा चउण्हं तिण्हि वरिसा दस य मासा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।

भावार्थः—इसी प्रकार राजा श्रेणिक की रानी और कोणिक की छोटी माता, पितृसेन कृष्णा देवी ने भगवान् का उपदेश श्रवण कर महासती चन्दनबालाजी आर्याजी के शरण मे जाकर दीक्षा धारण की। इन पितृसेन कृष्णा आर्याजी ने, अपनी गुराणीजी की आज्ञा प्राप्त कर 'मुक्तावलि' नामक तपस्या नीचे के अनुसार की:—सर्व प्रथम उपवास किया। पारणा करके बेला किया। पारणा करके उपवास किया। पारणा करके तेला किया। यो, एक-एक उपवास बीच-बीच मे करती हुईं, इनकी सख्या को सोलह तक इन्होंने पहुँचाया। फिर इसी प्रकार बीच-बीच में, उपवास करती हुईं जिस प्रकार चढ़ी थी, उसी प्रकार एक उपवास तक वे उतरी। इस प्रकार एक परिपाटी हुई। यूं, काली रानी की तरह, चारों ही परिपाटियाँ-लड़ियाँ-उन्होने सम्पूर्ण की। इसकी एक परिपाटी मे पूरे-पूरे उनसाठ दिन पारणा के और अवशेष तपस्या के दिन यूं कुल मिला कर ग्यारह महीने और पन्द्रह दिन होते है। चारो ही परिपाटियो के करने मे कुल तीन वर्ष और दस महीने होते है। इस मुक्तावलि तपस्या का यन्त्र इस प्रकार है:—

१	२	१	३	१	४	१	५	१	६	१	७	१	८	१	९	१	१०	१	११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१		
													मुक्तावलि स्थापना																	१६
१	२	१	३	१	४	१	५	१	६	१	७	१	८	१	९	१	१०	१	११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१		

मूलः—एवं महासेणकण्हा वि, णवरं आयंविलवड्ढमाणं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तंजहा—आयंबिलं करेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता बे आयंबिलाइं करेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता तिण्णि आयंबिलाइं करेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता चत्तारि आयं-बिलाइं करेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता पंच आयंबिलाइं करेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता छ आयंबिलाइं करेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता एकोत्तरियाए वुड्ढीए आयंबिलाइं वड्ढांति चउत्थंतरियाइं जाव आयंबिलसयं करेइ २ त्ता चउत्थं करेइ।

भावार्थः—इसी तरह राजा श्रेणिक को रानी और कोणिक की छोटी माता, 'महासेनकृष्णा' नामक देवी

ने भी यथा-समय, श्री भगवान् महावीर का धर्मोपदेश सुनकर, महासती चन्दनबाला आर्याजी के पास दीक्षा अङ्गीकार की उन्होंने अपनी पूजनीया गुराणीजी की आज्ञा लेकर, 'आयम्बिल-वर्द्धमान' नामक तपस्या की। उसमें सर्वप्रथम, एक आयम्बिल किये। दूसरे दिन उपवास किया। फिर दो आयम्बिल किये। उपवास किया। तीन आयम्बिल किये। उपवास किया। चार आयम्बिल किये। उपवास किया। पाँच आयम्बिल किये। उपवास किया। छ आयम्बिल किये। उपवास किया। यो, बीच-बीच मे उपवास करते हुए, पूरे-पूरे एक सौ आयम्बिल किये और, उपवास किया। इस तपस्या का यन्त्र इस प्रकार है:—

१	१	२	१	३	१	४	१	५	१	६	१	७	१	८	१	९	१	१०	१	११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१
१६	१	१७	१	१८	१	१९	१	२०	१	२१	१	२२	१	२३	१	२४	१	२५	१	२६	१	२७	१	२८	१	२९	१	३०	१
३१	१	३२	१	३३	१	३४	१	३५	१	३६	१	३७	१	३८	१	३९	१	४०	१	४१	१	४२	१	४३	१	४४	१	४५	१
४६	१	४७	१	४८	१	४९	१	५०	१	५१	१	५२	१	५३	१	५४	१	५५	१	५६	१	५७	१	५८	१	५९	१	६०	१
६१	१	६२	१	६३	१	६४	१	६५	१	६६	१	६७	१	६८	१	६९	१	७०	१	७१	१	७२	१	७३	१	७४	१	७५	१
७६	१	७७	१	७८	१	७९	१	८०	१	८१	१	८२	१	८३	१	८४	१	८५	१	८६	१	८७	१	८८	१	८९	१	९०	१
९१	१	९२	१	९३	१	९४	१	९५	१	९६	१	९७	१	९८	१	९९	१	१००	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

मूलः—तए णं सा महासेनकण्हा अज्जा आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं चोद्दसहिं वासेहिं तिहि य मासेहिं वीसहि य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव सम्मं काएणं फासेइ, जाव

आराहेत्ता जेणेव अज्जचंद्णा अज्जा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अज्जचंद्णं अज्जं वंद्इ णमंसइ वंद्त्तिा नमंसित्ता बहूहिं चउत्थेहिं जाव भावेमाणी विहरइ। तएणं सा महासेन-कण्हा अज्जा तेणं आरालेणं जाव उवसोभेमाणी चिट्ठइ।

भावार्थ.–उन महासेन कृष्णा आर्याजी ने 'आयम्बिल वर्द्धमान' तपस्या करने में पूरे-पूरे चौदह वर्ष, तीन मास और बीस दिन लगाये। जिस प्रकार सूत्रों में विधि-विधान इस तपस्या के लिए बतलाया गया है, उसी प्रकार इन आर्याजी ने, सम्यक् प्रकार से इसकी आराधना करके, श्री चन्दनबालाजी के पास वे आई। और उन्हे वन्दना करके, फिर भी छुटकर तपस्या मे जुट पडी। ऐसी तपस्या करने से इन महासेन कृष्णा आर्याजी का शरीर, रुधिर और मास से प्राय· रहित, अर्थात् दुर्बल हो गया। पर तपस्या के प्रभाव से शरीर इनका तेजोमय और अनुपम कान्तिशाली बना रहा।

मूलः–तए णं तीसे महासेणकण्हाए अज्जाए अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकाले चिंता जहा खंद्यस्स जाव अज्जचंद्णं अज्जं आपुच्छइ जाव संलेहणा, कालं अणव-कंखमाणी विहरइ। तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा, अज्जचंद्णाए अज्जाए अंतिए सा-

माइयाइं एक्कारस्स अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुन्नाइं सत्तरस वासाइं परियायं पालइत्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेत्ता सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरइ जाव तमट्ठं आराहेइ चरिमउस्सासणीसासेहिं सिद्धा बुद्धा। अट्ठ य वासा आदी एकोत्तरियाए जाव सत्तरस। एसो खलु परिताओ सेणियभज्जाण णायव्वो।

भावार्थ—तत्पश्चात्, उन महासेन कृष्णा आर्याजी को एक दिन पिछली रात्रि में, खन्दक की तरह विचार उत्पन्न हुआ, कि जो भी मेरा शरीर इस तपस्या से ऐसा कृश हो गया है। तथापि कुछ और शक्ति मुझ में है। अतः कल सूर्योदय होते ही, महासती चन्दनबालाजी से पूछकर मुझे सन्थारा कर लेना चाहिए। तदनुसार प्रातःकाल होते ही उन्होंने अपनी धर्म—जननी गुराणीजी की आज्ञा प्राप्त कर सन्थारा ले लिया। अर्थात् 'यश के लिए मैं अधिक जीऊँ' या 'दुख के कारण मैं शीघ्र ही मरूँ' इन सम्पूर्ण प्रकार के संकल्प-विकल्पों से रहित होकर, समाधि मार्ग मे प्रसन्न चित्त से रहने लगी। इन महासेन कृष्णा आर्याजी ने श्री चन्दनबालाजी से, सामायिक से लगाकर ग्यारहों अङ्गों तक का सर्वाङ्ग ज्ञानाध्ययन कर लिया। लगातार के सतरह वर्षो तक चारित्र का पालन किया। अन्तिम समय में, पूरे एक मास का सन्थारा कर, अन्तिम श्वासोश्वास में अपने सम्पूर्ण घनघाती कर्मो को नष्ट कर, मुक्ति में वे पहुँचीं। काली आर्याजी ने आठ वर्ष चारित्र पाला। दूसरी

सुकाली ने नौ वर्ष। यो क्रमश. एक-एक वर्ष हुई महासेन कृष्णा ने पूरे-पूरे सतरह वर्षो तक चारित्र का पालन किया। ये दसो ही राजा श्रेणिक की रानियाँ थी। और, कौणिक की छोटी माताएँ।

मूलः—एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते तिबेमि। अंतगडदसाणं अंगस्स एगो सुयखंधो अट्ठवग्गा अट्ठसु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति, तत्थ पढम-वितियवग्गे दस दस उद्देसगा, तइयवग्गे तेरस उद्देसगा, चउत्थ पंचमवग्गे दस दस उद्देसया छट्ठवग्गे सोलस उद्देसगा, सत्तमवग्गे तेरस उद्देसगा, अट्ठमवग्गे दस उद्देसगा। सेसं जहा नायाधम्मकहाणं।

भावार्थ—हे जम्बू ! धर्म के प्रकट करने वाले, श्रमण भगवान महावीर जो मोक्ष मे पधार गये, उन्होने आठवे अङ्ग 'अन्तगढ-सूत्र' का यह भाव फर्माया है। उसे मैंने ज्यो का त्यो तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया। इस अन्तगढ मे एक श्रुतस्कन्ध और आठ वर्ग है। और, जिन्हे केवल आठ ही दिनो मे भगवान् ने फर्माया है। इसके प्रथम और दूसरे वर्गो मे क्रमश. दस-दस अध्ययन है। तीसरे वर्ग में तेरह, और चौथे तथा पाँचवे वर्गो मे फिर दस-दस अध्ययन है। छठे वर्ग मे सोलह अध्ययन। सातवे वर्ग में तेरह और आठवे वर्ग में दस अध्ययन है। अवशेष ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र के अनुसार जानना चाहिए।

॥ इति समाप्त ॥

श्री मदन्तकृद्दशांगसूत्र समाप्तम्